॥ प्रज्ञोपनिषद् ॥

३

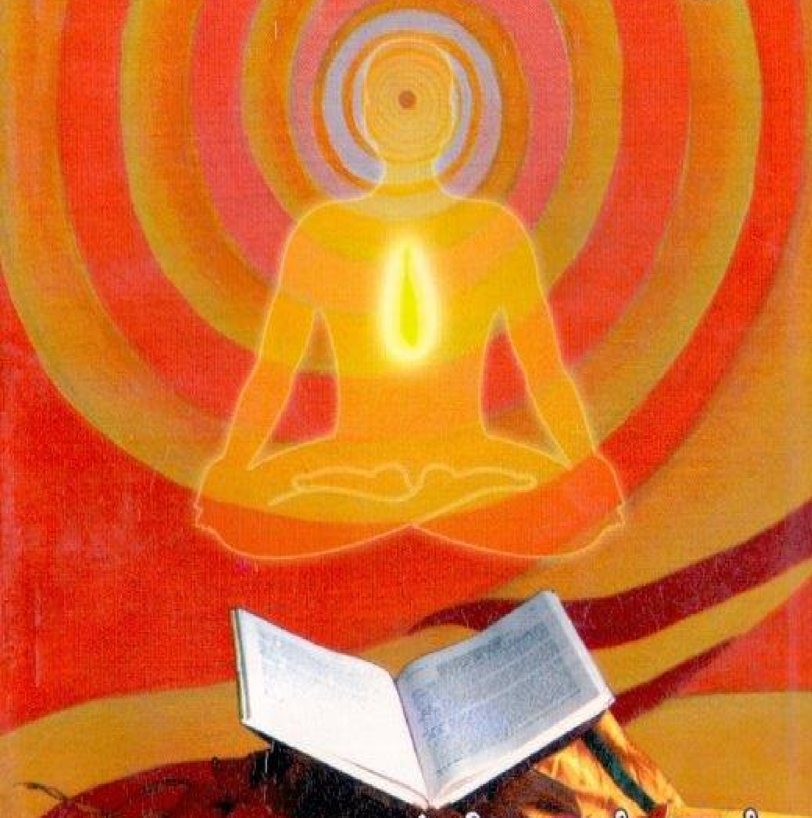

-पं श्रीराम शर्मा आचार्य

प्रज्ञोपनिषद्

तृतीय खंड

☆

संपादक

ब्रह्मवर्चस

☆

प्रकाशक

युग निर्माण योजना

गायत्री तपोभूमि, मथुरा—२८१००३

फोन : (०५६५) २५३०१२८, २५३०३९९

प्रकाशक :
युग निर्माण योजना
गायत्री तपोभूमि, मथुरा

लेखक :
पं० श्रीराम शर्मा आचार्य

प्रथम संस्करण : २००६

मूल्य : १५.०० रुपये

मुद्रक :
युग निर्माण योजना प्रेस
गायत्री तपोभूमि, मथुरा-२८१००३

प्राक्कथन

परमपूज्य गुरुदेव पं० श्रीराम शर्मा आचार्य जी ने 'प्रज्ञापुराण' के रूप में जन-जन को लोक-शिक्षण का एक नया आयाम दिया है। इसमें उनने चिरपुरातन उपनिषद् शैली में आज के युग की समस्याओं का समाधान दिया। यह क्रांतिदर्शी चिंतन उनकी लेखनी से जब निस्सृत हुआ तो इसने पूरे क्षेत्र को उद्वेलित करके रख दिया। वस्तुतः यह पुरुषार्थ हजारों वर्षों बाद सप्तर्षियों की मेधा के समुच्चय को लेकर जन्मे प्रज्ञावतार के प्रतिरूप आचार्यश्री द्वारा जिस तरह किया गया, उसने इस राष्ट्र व विश्व की मनीषा को व्यापक स्तर पर प्रभावित किया।

प्रज्ञा पुराण की रचना परमपूज्य गुरुदेव ने क्यों की? इस तथ्य को समझने के लिए प्रज्ञा पुराण के प्रथम खंड की भूमिका में उनके द्वारा लिखे गए अंश ध्यान देने योग्य हैं—'अपना युग अभूतपूर्व एवं असाधारण रूप से उलझी हुई समस्याओं का युग है। इनका निदान और समाधान भौतिक-क्षेत्र में नहीं, लोक-मानस में बढ़ती जा रही आदर्शों के प्रति अनास्था की परिणति है। काँटा जहाँ चुभा है, वहीं कुरेदना पड़ेगा। भ्रष्ट-चिंतन और दुष्ट आचरण के लिए प्रेरित करने वाली अनास्था को निरस्त करने के लिए ऋतंभरा महाप्रज्ञा के दर्शन एवं प्रयोग ब्रह्मास्त्र ही कारगर हो सकता है।

प्रस्तुत प्रज्ञा पुराण में भूतकाल के उदाहरणों से भविष्य के सृजन की संभावना के सुसंपन्न हो सकने की बात गले उतारने का प्रयत्न किया गया है। साथ ही यह भी बताया गया है कि परिवर्तन प्रकरण को संपन्न करने के लिए वर्तमान में किस रीति-नीति को अपनाने की आवश्यकता पड़ेगी और किस प्रकार जाग्रतात्माओं को अग्रिम पंक्ति में खड़े होकर अपना अनुकरणीय उदाहरण प्रस्तुत करना होगा।

उन्होंने इसे उपनिषद् शैली में ऋषियों के संवाद रूप में प्रकट किया। जनसामान्य के लिए पुराणों वाली कथा-शैली अधिक रुचिकर एवं ग्राह्य होती है, इसलिए उन्होंने उपनिषद् सूत्रों के साथ प्रेरक कथानक एवं संस्मरण जोड़कर उसे पुराण रूप दिया। इस रूप में चार खंड प्रकाशित हुए, यह इतने लोकप्रिय हुए कि सन् १९७९ से अब तक बीस से अधिक संस्करण प्रकाशित हो चुके हैं।

स्वाध्यायशीलों के लिए उन्होंने इसे प्रज्ञोपनिषद् के रूप में प्रकाशित करने का भी निर्देश दिया था। आचार्यश्री के वाङ्मय की इकाई के रूप में इसके छह खंडों को एक ही जिल्द में प्रकाशित किया गया। उसकी लोकप्रियता एवं उपयोगिता को देखते हुए स्वाध्याय-प्रेमियों की सुविधा की दृष्टि से प्रज्ञोपनिषद् के छहों खंडों को अलग-अलग केवल श्लोक एवं टीका के साथ प्रकाशित किया जा रहा है। इसका नियमित स्वाध्याय करने की प्रेरणा देते हुए पूज्य आचार्यश्री ने प्रारंभिक निर्देशों में लिखा—

''दैनिक स्वाध्याय में इसका प्रयोग करना हो तो गीता पाठ, रामायण पाठ, गुरुग्रंथ साहब स्तर पर ही इसे पवित्र स्थान एवं श्रद्धाभरे वातावरण में धूप, दीप, अक्षत, पुष्प जैसे पूजा-प्रतीकों के साथ इसका वाचन करना-कराना चाहिए। जो पढ़ा जाए, समझ-समझकर धीरे-धीरे ही। प्रतिपादनों को अपने जीवनक्रम में सम्मिलित कर सकना, किस प्रकार, किस सीमा तक संभव हो सकता है, यह विचार करते हुए रुककर पढ़ा जाए।''

छहों खंडों की विषयवस्तु इस प्रकार है—प्रथम खंड में आज के युग की समस्याओं के मूल कारण आस्था-संकट का विवरण है। द्वितीय खंड धर्म के आधारभूत शाश्वत गुणों पर, तृतीय खंड परिवार-संस्था, गृहस्थ जीवन, नारीशक्ति के विभिन्न पक्षों पर, चतुर्थ खंड देव संस्कृति के आज लुप्त हो रहे उन पक्षों पर केंद्रित है, जिन पर भारतीय धर्म टिका है। पाँचवाँ खंड सर्वधर्म सद्भाव को समर्पित है, जो विश्व धर्म का भविष्य में आधार बनेगा। अंतिम छठा खंड वैज्ञानिक अध्यात्मवाद की धुरी पर लिखा गया है। आर्य संस्कृति के यज्ञ विज्ञान, परोक्ष जगत आदि पक्ष वैज्ञानिक धर्म की पृष्ठभूमि में समझाए गए है।

उक्त छह प्रकरणों को पृथक-पृथक पुस्तिकाओं के रूप में प्रकाशित करने का उद्देश्य यह है कि विज्ञजन इसका पाठ-अध्ययन नियमित रूप से करते रह सकें। इससे युगऋषि द्वारा अवतारित युगांतरकारी सूत्र जन-जन के विचारों एवं आचरण में प्रवेश करके युग परिवर्तन-उज्ज्वल भविष्य का ठोस आधार तैयार कर सकेंगे।

युगऋषि-प्रज्ञापुरुष की जन्म शताब्दी (२०११-२०१२) की तैयारी की वेला में उनका ही रचा यह युगदर्शन उन्हीं के चरणों में समर्पित है।

—ब्रह्मवर्चस

भूमिका

प्रस्तुत खंड देव संस्कृति की परिवार निर्माणरूपी एक महत्त्वपूर्ण विधा पर केंद्रित है। आज के आधुनिक समाज में यह खंड एक संजीवनी की तरह महत्त्वपूर्ण है। इसमें परिवार व्यवस्था, गृहस्थ जीवन, नारी माहात्म्य, शिशुनिर्माण, वृद्धजन माहात्म्य, सुसंस्कारिता-संवर्द्धन एवं विश्व परिवाररूपी सात अति महत्त्वपूर्ण प्रकरण हैं। महर्षि धौम्य द्वारा सद्गृहस्थों के मार्गदर्शन हेतु आयोजित एक विशेष सत्र का विचार, नवनीत इसमें है।

परिवार व्यवस्था प्रकरण में ऋषि इसे घर में रहते हुए तपोवन का वातावरण बनाने की महत्ता पर प्रकाश डालते हैं। महर्षि की मान्यता है कि गृहस्थ धर्म का परिपालन एक प्रकार का योगाभ्यास है। सीमित प्रजनन, संयम का पालन एवं संतति को सुसंस्कारी बनाना सभी का उद्देश्य होना चाहिए। पारिवारिक पंचशीलों की इसमें चर्चा है। गृहस्थ जीवन प्रकरण में इस आश्रम की महत्ता बताते हुए जोर देते हैं कि पवित्र बंधन में बँधे दंपती किस आचार संहिता का पालन करें? संयुक्त परिवार प्रथा का ऋषि हर दृष्टि से समर्थन करते हैं। नारी-माहात्म्य प्रकरण में वे नारी को गृहलक्ष्मी-प्रत्यक्ष देवी बताते हैं, समुन्नत नारी ही परिवार को स्वर्ग बनाती है। वह भावना प्रधान है, कल्पवृक्ष है और जो उसे सम्मान देता है, उसे इच्छित प्रतिफल सुनिश्चित मिलता है, नारी को भी सम्मान-अधिकार मिले, उसका सम्मान हो तो ही सतयुग का वातावरण पुनः लाया जा सकता है, यह ऋषि धौम्य की मान्यता है।

शिशुनिर्माण प्रकरण वस्तुतः इस महत्त्वपूर्ण विषय पर केंद्रित है, जिसकी आज सामान्यतया उपेक्षा हो रही है। आज के बालक ही कल समाज के संचालक और राष्ट्र-नायक बनेंगे, इस कारण गृहस्थों

को अभी से उन्हें सँवारना चाहिए। वे गीली मिट्टी के समान हैं। जन्मदाता ही यदि अनगढ़ होंगे तो बालक कैसे महामानव बन पाएँगे? यह तथ्य ऋषि समझाते हैं। इसके लिए कन्या-पुत्र में भेदभाव हटाया जाए एवं परिवार का वातावरण सुसंस्कारी बनाया जाए, इस पर उनका जोर है। बच्चों की शिक्षा-दीक्षा, सत्संगति आदि पर महत्त्व देने पर ही राष्ट्र का भविष्य उज्ज्वल होगा, यह बात बताई जा रही है।

वृद्ध जन माहात्म्य प्रकरण आज के युग में हो रही इस कर्म की उपेक्षा के समय में अति संवेदनशील है। वानप्रस्थ अपनाया जाए एवं समाज का ऋण चुकाने में लगा जाए। आश्रमों में शिक्षण किया जाए, अपनी योग्यता का लाभ समाज को दिया जाए, यह समय की माँग है। सुसंस्कारिता- संवर्द्धन प्रकरण में साधना-स्वाध्याय, सत्संग-सेवा को परिवार व समाज में किस तरह नियोजित किया जाए, इस पर चर्चा है। अंतिम अध्याय विश्व परिवार प्रकरण व्याख्या करता है कि प्रगतिशील समाजों-संगठनों का परिष्कृत रूप ही विश्व परिवार है और यही आने वाले दिनों में होने जा रहा है। प्रस्तुत खंड हर दृष्टि से सबके लिए उपयोगी है।

— ब्रह्मवर्चस

प्रज्ञोपनिषद्
तृतीय मंडल

विषय-सूची	पृष्ठ सं०
१. प्राक्कथन	३
२. भूमिका	५
३. गुरु-ईश-वंदना	८
४. परिवार-व्यवस्था प्रकरण	९
५. गृहस्थ जीवन प्रकरण	२४
६. नारी-माहात्म्य प्रकरण	३९
७. शिशुनिर्माण प्रकरण	५२
८. वृद्धजन-माहात्म्य प्रकरण	६६
९. सुसंस्कारिता-संवर्द्धन प्रकरण	८०
१०. विश्व परिवार प्रकरण	९४
११. युगदेव-स्तवन (संस्कृत-हिंदी)	१०९

॥ गुरु-ईश-वंदना ॥

गुरु-ईश-वंदना के इन श्लोकों से भावपूर्ण वंदना करके 'प्रज्ञोपनिषद्' का पारायण प्रारंभ किया जा सकता है।

त्वमादिदेवः पुरुषः पुराणः, त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम्।
वेत्तासि वेद्यं च परं च धाम, त्वया ततं विश्वमनन्तरूप! ॥
भवानीशंकरौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ।
याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धाः स्वान्तः स्थमीश्वरम्॥
नमः पुरस्तादथ पृष्ठतस्ते नमोऽस्तु ते सर्वत एव सर्व।
अनन्तवीर्यामितविक्रमस्त्वं सर्वं समाप्नोषि ततोऽसि सर्वः॥
वायुर्यमोऽग्निर्वरुणः शशांकः प्रजापतिस्त्वं प्रपितामहश्च।
नमो नमस्तेऽस्तु सहस्रकृत्वः पुनश्चभूयोऽपि नमो नमस्ते॥
एको देवः सर्वभूतेषु गूढः सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च॥
नमस्ते नमस्ते विभो! विश्वमूर्ते! नमस्ते नमस्ते चिदानन्दमूर्ते!।
नमस्ते नमस्ते तपोयोगगम्य! नमस्ते नमस्ते श्रुतिज्ञानगम्य!॥
वयं त्वां स्मरामो वयं त्वां भजामो वयं त्वां जगत्साक्षिरूपं नमामः।
सदेकं निधानं निरालम्बमीशं भवाम्भोधिपोतं शरण्यं व्रजामः॥

ॐ वन्दे भगवतीं देवी, श्रीरामञ्च जगद्गुरुम्।
पादपद्मे तयोः श्रित्वा, प्रणमामि मुहुर्मुहुः॥
नमोऽस्तु गुरवे तस्मै, गायत्री रूपिणे सदा।
यस्य वागमृतं हन्ति, विषं संसार संज्ञकम्॥

ॐ प्रखर प्रज्ञाय विद्महे, महाकालाय धीमहि, तन्नः श्रीरामः प्रचोदयात्॥ ॐ सजल श्रद्धायै विद्महे, महाशक्त्यै धीमहि, तन्नो भगवती प्रचोदयात्॥

॥ प्रज्ञोपनिषद् ॥

॥ तृतीय मंडल ॥

॥ अथ प्रथमोऽध्यायः ॥

परिवार-व्यवस्था प्रकरण

एकदा तु हरिद्वारे कुंभपर्वणि पुण्यदे।
पर्वस्नानस्य सञ्जातः समारोहोऽत्र धार्मिकः ॥ १ ॥
देशांतरादसंख्यास्ते सद्गृहस्थाश्च संगताः।
अवसरे च शुभे सर्वे पुण्यलाभाप्तिकाम्यया ॥ २ ॥
सद्भिर्महात्मभिश्चापि संगत्यात्र परस्परम्।
संदर्भे समयोत्पन्नस्थितीनां विधयः शुभाः ॥ ३ ॥
मृग्यास्तथा स्वसंपर्कक्षेत्रजानां नृणामपि।
समस्यास्ताः समाधातुं सत्प्रवृत्तेर्विवर्धने ॥ ४ ॥
मार्गदर्शनमिष्टं च राष्ट्रकल्याणकारकम्।
भागीरथीतटे तस्मात्सम्मर्दः सुमहानभूत् ॥ ५ ॥
पुण्यारण्येषु गत्वा च सर्वे देवालयेष्वपि।
प्रेरणाः प्राप्नुवन्त्युच्चा धार्मिकास्ते जनाः समे ॥ ६ ॥

टीका—एक बार पुण्यदायी कुंभपर्व पर हरिद्वार क्षेत्र में विशाल पर्व-स्नान का धर्म समारोह हुआ। देश-देशांतरों से अगणित सद्गृहस्थ उस अवसर पर पुण्यलाभ पाने के लिए एकत्रित हुए। साधु-संतों को भी परस्पर मिल-जुलकर सामयिक परिस्थितियों के संदर्भ में उपाय

खोजने थे, साथ ही अपने संपर्क-क्षेत्र के लोगों की समस्याएँ सुलझाने एवं सत्प्रवृत्तियाँ बढ़ाने के संदर्भ में राष्ट्र-कल्याणकारी मार्गदर्शन भी करना था। भागीरथी के तट पर अपार भीड़ थी, तीर्थ-आरण्यकों और देवालयों में पहुँचकर धर्मप्रेमी उच्चस्तरीय प्रेरणाएँ प्राप्त कर रहे थे॥ १-६ ॥

अस्मिन् पर्वणि धौम्यश्च महर्षिः स व्यधाच्छुभम्।
सत्रं तत्र गृहस्थानां मार्गदर्शनहेतवे॥ ७॥
तस्या आयोजनस्येयं सूचना विहिताऽत्र च।
शंखनादेन घण्टानां निनादेनापि सर्वतः ॥ ८॥

टीका—इस पर्व आयोजन के बीच महर्षि धौम्य ने सद्गृहस्थों के मार्गदर्शन हेतु एक विशेष सत्र का आयोजन किया। इस आयोजन की सूचना शंख बजाते हुए सभी को दे दी गई॥ ७-८॥

सत्रसप्ताहमारब्धं विषयेष्वपि च सप्तसु।
प्रथमे दिवसे चाभूदौत्सुक्यमधिकं नृणाम्॥ ९॥
जिज्ञासवो गृहस्थाश्च बहवस्तत्र संगताः।
गृहिण्योऽपि विवेकिन्यो बह्वयस्तत्र समागताः॥ १०॥
उपस्थितान् गृहस्थाँश्च संबोध्योवाच तत्र सः।
ऋषिर्धौम्यो गृहस्थस्य गरिम्णो विषयेऽद्भुतम्॥ ११॥
पुण्यदं घोषितं तच्च गृहेऽपि वसतां नृणाम्।
वातावृतेस्तपोभूमेः समानाया विनिर्मितेः ॥ १२॥
गुरुकुलस्य विशालस्य संचालनविधेरिव।
ओजस्विन्यां गभीरायां वाचि वक्तव्यमाह च॥ १३॥

टीका—सत्र प्रारंभ हुआ। इसे सात दिन चलना था और सात विषयों पर प्रकाश डाला जाना था। प्रथम दिन उत्सुकता अधिक थी।

बहुत से जिज्ञासु गृहस्थ उपस्थित हुए। विचारशील महिलाएँ भी उसमें बड़ी संख्या में उपस्थित थीं। उपस्थित सद्गृहस्थों को संबोधित करते हुए, महर्षि धौम्य ने गृहस्थ धर्म की अद्भुत गरिमा बताई। उसे घर में रहते हुए तपोवन का वातावरण बनाने और गुरुकुल चलाने के समान पुण्य-फलदायक बताया। गंभीर ओजस्वी वाणी में अपना प्रतिपादन प्रस्तुत करते हुए वे बोले— ॥ ९-१३ ॥

धौम्य उवाच—

गृहस्थाश्रमधर्मस्य परिपालनमप्यहो ।
योगाभ्यास इवास्तीह संयमादात्मनः सदा ॥ १४ ॥
यथाकालं तु ये चैनं धर्मं संपादयन्त्यलम् ।
परलोकेऽथ लोकेऽपि सुखं संतोषमेव च ॥ १५ ॥
यशः श्रेयश्च विन्दंति मोदन्ते सर्वदा तथा ।
स्वप्रयासानुरूपं च लभन्ते पुण्यमुत्तमम् ॥ १६ ॥
सद्गतेरधिकारित्त्वं प्राप्यते यान्ति निश्चितम् ।
जीवनस्य परं लक्ष्यं पदं च योगिनो यथा ॥ १७ ॥

टीका—महर्षि धौम्य ने कहा—गृहस्थ धर्म का परिपालन भी एक प्रकार का योगाभ्यास है। चूँकि इसमें सदा आत्मसंयम का पालन करना पड़ता है। जो इसे यथा समय सही रूप में संपन्न करते हैं, वे लोक और परलोक में सुख, संतोष, यश एवं श्रेय को प्राप्त करते हैं तथा प्रसन्न रहते हैं। अपने प्रयास के अनुरूप वे पुण्यफल पाते और सद्गति के अधिकारी बनकर योगियों की तरह ही जीवनलक्ष्य तक पहुँचते और परमपद पाते हैं ॥ १४-१७ ॥

लघुराष्ट्रं समाजोऽल्पः परिवारस्तु वर्तते ।
सीमिताश्च जनास्तत्र परिवारे भवंत्यपि ॥ १८ ॥

अतएव विधातुं च गृहस्थं सुव्यवस्थितम्।
विकासोपेतमप्यत्र सुविधा अधिका मताः ॥ १९ ॥
वसतां परिवारे च सञ्चालनकृतामपि ।
दायित्वमुभयोरेतत्समुदायमिमं सदा ॥ २० ॥
समाजं राष्ट्रमेवापि सादर्शं निर्मितुं समान्।
सद्भावान् बुद्धिमत्तां च क्रियाकौशलमाश्रयेत्॥ २१ ॥

टीका—परिवार एक छोटा राष्ट्र या समाज है। उसमें सीमित लोग रहते हैं। अस्तु, उसे सँभालने, विकसित करने का अभ्यास करते रहने की सुविधा भी अधिक है। जो परिवार में रहें या उसे चलाएँ, उन दोनों ही वर्गों का उत्तरदायित्व है कि इस समुदाय को एक आदर्श समाज, आदर्श राष्ट्र बनाने में अपनी समस्त सद्भावना, बुद्धिमत्ता एवं क्रिया-कौशल नियोजित करें॥ १८-२१ ॥

वस्तुतः परिवारस्तु संयुक्तो कथितो बुधैः।
पुण्यं संघटनं यस्य सुव्यवस्था मता तु सा॥ २२ ॥
सद्भावस्य बाहुल्यात्सहकारस्य संततम्।
कर्त्तव्यपालने बुद्धिः कर्त्तव्या परिवारगैः॥ २३ ॥
अधिकारोपलब्धेश्च यावत्यः सुविधाश्च ताः।
भवेयुः कर्म कर्तुं च यत्र यत्नो विधीयताम्॥ २४॥
स्वापेक्षया परेषां हि सुविधासु भवेद् यदि।
ध्यानं तदैव कस्मिंश्चित्समुदाये तु मित्रता ॥ २५ ॥
आत्मीयता तथा नूनं सहकारस्य भावना।
विकसिता दृश्यते यैश्च विना शून्यं हि जीवनम्॥ २६ ॥

टीका—परिवार वस्तुतः एक पवित्र संयुक्त संगठन है। उसकी सुव्यवस्था पारस्परिक सद्भाव-सहकार की बहुलता से ही बन पड़ती है। सभी सदस्य कर्त्तव्यपालन पर अधिक ध्यान दें और अधिकार उपलब्ध करने की जितनी सुविधा मिले, उसी में से किसी प्रकार काम चलाने का प्रयत्न करें। अपनी अपेक्षा दूसरों की सुविधा का ध्यान अधिक रखने पर ही किसी समुदाय में मैत्री, आत्मीयता एवं सहकार के सद्भाव विकसित होते हैं, जिनके बिना जीवन शून्य प्रतीत होता है॥ २२-२६ ॥

एतत् कुटुंबसंस्थायाः घटनं नैव केवलम् ।
कामकौतुकहेतोर्वा भोजनस्य कृते पुनः ॥ २७ ॥
वस्तुसंग्रहरक्षार्थं नित्यकर्मव्यवस्थितेः ।
इयन्मात्राय दायित्वं बृहत्कश्चित्कथं वहेत् ॥ २८ ॥
एतास्तु सुविधा द्रव्यात्पण्यशालासु चाञ्जसा ।
प्राप्तुं शक्या व्ययश्चापि न्यूनस्तत्र भवेत्तथा ॥ २९ ॥
दायित्वेभ्योऽपरेभ्यश्च मुक्तस्तिष्ठति मानवः ।
इयत्यपि नरो बद्धः कुटुंबस्यानुशासने ॥ ३० ॥

टीका—परिवार संस्था का गठन काम-कौतुक, भोजन व्यवस्था, सामान की सुरक्षा एवं नित्यकर्मों की व्यवस्था मात्र के लिए नहीं होता। इतने भर के लिए कोई क्यों तैयार होगा? ये सुविधाएँ तो सराय में पैसा चुकाते रहने पर और भी सरलतापूर्वक मिल सकती हैं। उनमें खरच भी कम पड़ेगा और जिम्मेदारियों से भी मुक्त रहा जा सकेगा। इतने पर भी हर बुद्धिमान व्यक्ति परिवारगत अनुशासन में ही बँधना चाहता है॥ २७-३० ॥

स्थातुमिच्छन्ति तत्रास्ति योग आत्मपरिष्कृतेः।
समाजाय सुयोग्यानां नागराणां समर्पितेः॥ ३१॥
वातावृतौ सुयोग्यायां व्यक्तिस्तिष्ठति सर्वदा।
संतुष्टा च प्रसन्ना च निश्चिंतता च कुटुंबके॥ ३२॥
अतएव चिरादेष मनुष्यो वसति स्वयम्।
कृत्वा परिवारनिर्माणं वैशिष्ट्यं मौलिकं त्विदम्॥ ३३॥
पारिवारिकताऽऽधारं समाश्रित्यैव जीवनम्।
अभूद् विकसितं तस्य जीवनं पशुतां गतम्॥ ३४॥
सामूहिकस्य योगोऽभूदुत्कर्षस्यैवमेष तु।
सृष्टेर्मुकुटरत्नं यन्मनुष्यः कथ्यतेऽधुना॥ ३५॥

टीका—इसके साथ आत्मपरिष्कार और समाज को सुयोग्य नागरिक प्रदान करने का परमार्थ भी जुड़ा हुआ है। उपयुक्त वातावरण में रहकर व्यक्ति प्रसन्न, संतुष्ट और निश्चिंत रहता है। इसलिए मनुष्य चिरकाल से परिवार बनाकर रहता आ रहा है। यह उसकी मौलिक विशेषता है। पारिवारिकता के आधार पर ही उसका पशुतुल्य निजी जीवन विकसित हुआ है और सामूहिक उत्कर्ष का ऐसा सुयोग बन सका है, जिसमें मनुष्य को सृष्टि का मुकुटमणि कहा जाता है॥ ३१-३५॥

चर्चामिमां महर्षिः स धौम्योऽग्रे वर्धयन्पुनः।
उवाच भद्राः शृणुत परिवारस्तु वर्तते॥ ३६॥
दिव्या प्रयोगशालेव सद्गुणोन्मेषकारिणी।
तस्य सञ्चालनं सम्यक् निर्धारणमथाऽपि च॥ ३७॥
यदि स्यान्निश्चितं तत्र सुयोग्याः शिक्षितास्तथा।
नागराः संभविष्यंति महापुरुषसंज्ञकाः॥ ३८॥

गुणं कर्म स्वभावं च कर्तुमुच्चैस्तरं तथा।
व्यक्तित्वं प्रखरं कर्तुं पाठशालेव च स्मृतः॥ ३९॥
अस्ति व्यायामशालेव परिवारस्तुनिश्चितम्।
जीवनस्योपयुक्तानि वैशिष्ट्यानि समभ्यसन्॥ ४०॥
समर्थो जायते यत्र नरः सर्वत एव च।
आत्मनः परिवारस्य हितं राष्ट्रस्य सिद्ध्यति॥ ४१॥

टीका—ऋषि प्रवर धौम्य अपनी चर्चा आगे बढ़ाते हुए पुनः बोले—हे भद्रजनो ! परिवार तो सद्गुणों को विकसित करने की एक प्रयोगशाला है। उसका सही निर्धारण एवं सुसंचालन किया जा सके तो निश्चय ही उस परिकर में से सुयोग्य-शिक्षित नागरिक एवं महामानव निकलेंगे। गुण-कर्म-स्वभाव को उच्चस्तरीय बनाने एवं व्यक्तित्व को गौरवशाली बनाने का पाठ इसी पाठशाला में पढ़ा जाता है। यही वह व्यायामशाला है, जिसमें जीवन भर काम आने वाली विशिष्टताओं का अभ्यास करते हुए हर दृष्टि से समर्थ बना जा सकता है, जिससे अपने परिवार का, राष्ट्र का हित सिद्ध होता है॥ ३९-४१॥

दूरदर्शित्वभावस्य तथैव सुव्यवस्थिते।
श्रेष्ठोऽभ्यासो गृहे कर्तुं शक्यो मर्त्येन चाञ्जसा॥ ४२॥
न तथा शक्यते प्राप्तुमन्यत्राऽनुभवो न च।
प्रशिक्षणं लभेतापि व्यवहारानुकूलगम्॥ ४३॥
आदिकालात्समाश्रित्याधारं तं पारिवारिकम्।
चलतीह तु विश्वस्य व्यवस्था स्वर्गसौख्यदा॥ ४४॥
दिनेषु तेषु चाभूत् सा वातावृतिरतः शुभाः।
सत्यस्यात्र युगस्येव मर्त्यकल्याणकारिका॥ ४५॥

परंपराऽवहेलैव कारणं प्रमुखं तु तत्।
नरो येन महान् स्वार्थी क्षुद्रो जातो निरंतरम्॥ ४६ ॥
समस्याभिरनेकाभिस्तथाऽन्ते च विपत्तिभिः।
वृतः परं भविष्यं तु वर्तते प्रोज्ज्वलं ध्रुवम्॥ ४७ ॥

टीका—सुव्यवस्था और दूरदर्शिता का जितनी अच्छी तरह अभ्यास घर-परिवार के बीच किया जा सकता है, उतना व्यावहारिक प्रशिक्षण एवं अनुभव अर्जित कर सकना अन्यत्र कहीं भी संभव नहीं हो सकता। स्वर्ग के समान सुखदायी विश्वव्यवस्था आदिकाल से पारिवारिकता के आधार पर चलती रही है। सतयुगी वातावरण उन दिनों इसी कारण बना भी रहा, जो मनुष्यमात्र के कल्याण का कारण था। उस महान परंपरा की अवहेलना ही मुख्य कारण है, जिससे मनुष्य स्वार्थी व क्षुद्र बनता चला गया और अंत में अनेकानेक समस्याओं एवं विपत्तियों से घिर गया, लेकिन उसका भविष्य निश्चित ही उज्ज्वल है॥ ४२-४७ ॥

प्रस्तोतव्यः स आदर्शः पुरुषैरग्रजैः सदा।
अनुकुर्वन्तु तं सर्वं तथैवाऽनुजन्मनः ॥ ४८ ॥
कुतोऽप्येताः समायान्ति दुष्प्रवृत्तय उद्धताः।
परं प्रभावितान् कर्तुं सदस्यान् परिवारगान्॥ ४९ ॥
सत्प्रवृत्तिभिराभिश्चेदिष्टं तत्पुरुषैर्वरैः।
सदाचारैर्निजैरेवादर्शाः स्थाप्याः स्वयं शुभाः॥ ५० ॥
शिक्षा वास्तविकी चैवं दीयते नोपदेशजः।
प्रभावः प्रभवत्यत्र यथाऽऽचारसमुद्भवः॥ ५१ ॥

टीका—परिवार के बड़े लोग छोटों के सामने अपना आदर्श रखें, ताकि वे उनका अनुकरण कर सकें। दुष्प्रवृत्तियाँ तो कहीं से भी

दौड़ती हैं, पर सत्प्रवृत्तियों से पारिवारिक सदस्यों को प्रभावित करना हो तो उसके लिए बड़ों को ही अपना उदाहरण प्रस्तुत करना होगा। वास्तविक शिक्षा इसी प्रकार दी जाती है। प्रभाव उपदेशों का नहीं, सामने प्रस्तुत होते रहने वाले आचरण का पड़ता है॥ ४८-५१॥

शिष्टाचारं तथा सर्वे सदस्याः परिवारगाः।
व्यवहरंतु ससम्मानं मधुरं प्रवदंतु च॥ ५२॥
वार्त्तालापं कटुं नैव नाऽपमानयुतं तथा।
प्रकुर्वन्तु प्रणामस्य स्वीकुर्वन्तु परंपराम्॥ ५३॥
अपशब्दोपयोगोऽथ भूत्वा क्रोधवशस्तथा।
केशाकेशि न कर्त्तव्यं बाहूबाहवि वा पुनः॥ ५४॥

टीका—परिवार का हर सदस्य एकदूसरे के साथ शिष्टाचार बरते, सम्मान करे, मधुर शब्द बोले। कटु और अपमान सूचक वार्त्तालाप कोई न करे। परस्पर अभिवादन की परंपरा का निर्वाह होता रहे। अपशब्द कह बैठना, आवेश में आकर मार-पीट करना सभ्यजनों को शोभा नहीं देता॥ ५२-५४॥

कटुता वर्द्धतेऽनेन द्वेषो मालिन्यमेव च।
मानसं समुदेत्यत्र नैव भद्रा अशिष्टताम्॥ ५५॥
व्यवहारे प्रगृह्णंतु बुद्धिरत्र विधीयताम्।
यत्नः हस्तावलंबेन सहयोगे विधीयताम्॥ ५६॥
औदासीन्येन वोपेक्षाभावेनापि शनैः शनैः।
घनत्वं हीयते प्रेम्णः सहकारेण वर्द्धते॥ ५७॥
आत्मन्येव मनो येषां स्वार्थबुद्ध्या प्रवर्तते।
सध्रीचामवहेला च ये कुर्वंति नरास्तु ते॥ ५८॥

तिरस्कारं लभंते च हानिं विंदन्त्यपि भृशम्।
लाभो मानवदेहस्य प्राप्यत एभिर्नो क्वचित्॥ ५९॥

टीका—इससे कटुता बढ़ती है, द्वेष और मनोमालिन्य पनपता है। अतः हे भद्रपुरुषो ! अशिष्टता को परिवार व्यवहार में कहीं कोई स्थान न मिले, इसका समुचित ध्यान रखा जाए। हर सदस्य एकदूसरे का हाथ बँटाने, सहयोग देने का प्रयास करे। उपेक्षा और उदासी बरतने से घनिष्ठता घट जाती है। प्रेम और सहकार से सद्भाव बढ़ता है। मात्र अपना ही ध्यान रखने वाले और साथियों की अवहेलना करने वाले स्वार्थीजन बदले में तिरस्कार पाते और घाटे में रहते हैं, उन्हें मानव शरीर के कोई लाभ हस्तगत नहीं होते॥ ५५-५९॥

सीमितः परिवारः स्यात् संख्या स्वल्पैव संततेः।
सुखदा हानयोऽसंख्या बहुप्रजननोद्भवाः॥ ६०॥
जनन्या हीयते तत्रारोग्यमायुष्यमेव च।
परिवारसदस्यानां क्षीयंते सुविधास्तथा॥ ६१॥
प्रत्येकेन सदस्येन हानिरेव च लभ्यते।
अभिवृद्ध्याऽनया नूनं नवया चिंत्यतामिदम्॥ ६२॥
सञ्चालकः कुटुंबस्य तैलयंत्रवृषो यथा।
तथा भ्रमति चार्थस्य भारवाहितया ततः॥ ६३॥
उद्विग्नश्च भवत्येष विवेकं परिहाय च।
नीत्यनीती परित्यज्य यततेऽधिकमर्जितुम्॥ ६४॥

टीका—परिवार छोटा रहे, बच्चों की संख्या अधिक न बढ़े। बहुप्रजनन की असंख्यों हानियाँ हैं। जननी का आयुष्य और आरोग्य घटता है। परिवारगत सुविधाओं में नए सदस्य बढ़ने से कटौती होती है। हर सदस्य को इस नई अभिवृद्धि से घाटा उठाना पड़ता है। यह

बात बहुत चिंताजनक है। परिवार- संचालक को अर्थ भार वहन करने के लिए कोल्हू के बैल की तरह जुतना पड़ता है उद्विग्न होना पड़ता है। उसे विवेक खोकर नीति-अनीति का ध्यान रखे बिना अधिक कमाने का प्रयास करना पड़ता है॥ ६०-६४॥

शिशवोऽपि भवंत्यस्मात्स्नेहसौख्यप्रशिक्षणैः।
वञ्चिताः फलतस्तेषां विकासस्त्ववरुद्ध्यते॥ ६५॥
अंधकारमयं चैव भविष्यज्जायते ध्रुवम्।
यत्र राष्ट्रे समाजे वा जनसंख्या विवर्द्धते॥ ६६॥
अभावसंकटग्रस्ता जायंते तत्र पूरुषाः।
बहुप्रजननं तस्मात्त्यक्तव्यं भूतिमिच्छता॥ ६७॥
प्रसंगेऽस्मिंश्च यः कश्चिद् यावतीं न्यूनतां भजेत्।
बुद्धिमान् स तथैवात्र महान् वक्तुं भविष्यति॥ ६८॥

टीका—ऐसी स्थिति में बच्चे भी समुचित दुलार, प्रशिक्षण एवं सुविधा-साधनों से वंचित रहते हैं। फलतः उनका विकास रुकता है और भविष्य अंधकारमय बनता है। जिस समुदाय अथवा राष्ट्र में जनसंख्या बढ़ती है, वे अभावग्रस्त होते और संकटों से घिरे रहते हैं। अतः सुख चाहने वालों को बहुप्रजनन से बचना ही चाहिए। जो इस संदर्भ में जितना अधिक कटौती कर सके, उसे उतना ही बुद्धिमान कहा जाएगा॥ ६५-६८॥

मितव्ययत्वमेवाथ प्रत्येकस्मिंस्तु कर्मणि।
वर्तितव्यं महत्त्वं च द्रव्यस्यान्ये समेऽपि ते॥ ६९॥
सदस्या अधिगच्छंतु तथा बोध्याः पुनः पुनः।
नाश्यं नैव धनं व्यर्थं विलासस्य प्रदर्शने॥ ७०॥

अहं त्वस्यापि वा माता लक्ष्मीरित्युपयुज्यताम्।
हेयमित्यवमत्याऽसत् कार्येषु नोपयुज्यताम्॥ ७१॥
शृंगारे नैव कर्त्तव्यो व्ययोऽलंकरणेऽथवा।
सौजन्यं निहितं नूनं तत्र संस्कारिताऽपि च॥ ७२॥
स्वाभाविके तथा सौम्ये सरले जीवने द्वयम्।
सत्कर्मस्वेव वित्तानि सविवेकं नियुज्यताम्॥ ७३॥

टीका—हर कार्य में मितव्ययिता बरती जाए। हर सदस्य को पैसे का महत्त्व समझाया जाए। विलास, अहंता प्रदर्शिता करने वाले कामों में धन को बरबाद न होने दिया जाए। लक्ष्मी को माता मानकर उसका सदुपयोग किया जाए। हेय मानकर उसका दुरुपयोग न होने दें। शृंगार-अलंकरण पर कुछ भी खरच न किया जाए। सादगी में ही सज्जनता और सुसंस्कारिता सन्निहित है। सत्कर्मों में ही विवेकपूर्वक धन को नियोजित किया जाए॥ ६९-७३॥

विपत्कालस्य हेतोः स उन्नतेश्च प्रयोजनात्।
वित्तस्य संग्रहः कार्यो दक्ष आये व्यये भवेत्॥ ७४॥
प्रदर्शनेषु चायोग्यजनानां परितोषणे।
व्यसनेषु कुरीतीनां पालने वित्तनाशनम् ॥ ७५॥
नैव क्वापि विधातव्यं बुद्धिमत्वमिदं स्मृतम्।
एतत्तथ्यविदः संति सुखिनः संस्कृता अपि॥ ७६॥

टीका—कुसमय के लिए तथा उत्थान, प्रयोजनों के लिए धन की बचत की जाए। आय-व्यय में सावधानी रखें। दुर्व्यसनों में, उद्धत प्रदर्शनों में, अनपुयुक्त लोगों की आवभगत में, कुरीतियों के परिपालन में, पैसों का दुरुपयोग न होने देना ही बुद्धिमत्ता है। जो इस

तथ्य को समझते और अपनाते हैं—वे परिवार सुखी रहते, सुसंस्कृत कहलाते हैं॥ ७४-७६॥

सुव्यवस्थाविधौ ध्यानं स्वच्छतायां तथैव च।
प्रत्येकस्य सदस्यस्य भवेदेव निरंतरम्॥ ७७॥
अस्तव्यस्तत्वभावोऽयं मालिन्यमपि नो क्वचित्।
उद्भवेदव्यवस्थायां मालिन्यं च कुरूपता॥ ७८॥
तिष्ठतो येन व्यक्तित्वं हीयते कथितं त्विदम्।
कुसंस्कारयुतो भावस्तस्मादेनं परित्यजेत्॥ ७९॥
कलाकारितया ख्याते स्वच्छता च सुसज्जता।
सुरुचेर्दर्शनं तत्र शरीरं पुरुषा यथा॥ ८०॥
स्वच्छसुंदरमेवापि कुर्वन्त्येव निरंतरम्।
तथोपकरणान्यत्र वस्त्रपात्रगृहानपि॥ ८१॥

टीका—स्वच्छता और सुव्यवस्था की ओर घर के हर सदस्य का ध्यान रहे। गंदगी अस्तव्यस्तता कहीं भी पनपने न पाए। अव्यवस्था में ही गंदगी और कुरूपता है। इसी को कुसंस्कारिता कहा गया है, इससे व्यक्तित्व घटिया बनता है। स्वच्छता और सुसज्जा को ही कलाकारिता कहते हैं। इसमें सुरुचि का दर्शन होता है। शरीर को स्वच्छ-सुंदर रखने की तरह ही वस्त्र उपकरण, पात्र, मकान आदि सभी परिवार प्रयोग की वस्तुओं की सफाई पर पूरा ध्यान दिया जाए॥ ७७-८१॥

स्वच्छान् सुसज्जितानेव कर्तुमन्यान्यपि स्वयम्।
वस्तूनि पततां नित्यं व्यक्तित्वोदय-हेतवे॥ ८२॥
कृमिकीटादयो नैव तिष्ठेयुरिति यत्यताम्।
पवनस्यातपस्यापि प्रवेशो भवने भवेत्॥ ८३॥

वस्त्राणां स्वच्छताऽऽवासगृहस्यापि च स्वच्छता।
सुव्यवस्था विधिर्नूनं परिवारगतान् नरान्॥ ८४॥
सत्प्रवृत्तिपरान् पक्वप्रकृतीशंच समानपि।
विधत्तः सद्गुणश्चायं महत्त्वसहितो भुवि॥ ८५॥
लाभः सर्वैर्नरैरेष कर्तुं स्वर्गं गृहान् स्वकान्।
सदस्याश्च गृहस्थास्ते देवत्वं यान्तु सत्वरम्॥ ८६॥

टीका—अन्य वस्तुओं को स्वच्छ और सुसज्जित रखने से व्यक्तित्व में वृद्धि होती है। कृमि-कीटकों को जमने न दिया जाए। धूप और हवा का हर जगह प्रवेश हो। वस्त्रों की सफाई, निवास, गृह की स्वच्छता, सुव्यवस्था करते रहने से परिवार के सदस्यों के स्वभाव में सत्प्रवृत्ति की परिपक्वता बनती-बढ़ती है। यह एक महत्त्वपूर्ण सद्गुण है। अपने घर को स्वर्ग बनाने के लिए यह गुण सभी को प्राप्त करना चाहिए, ताकि उस घर में रहने वाले सदस्य शीघ्र देवत्व को प्राप्त हो जाएँ॥ ८२-८६॥

आगामिषु दिनेष्वेव समाजस्य नवा स्थितिः।
प्रज्ञायुगे समाश्रित्याधारं वै पारिवारिकम्॥ ८७॥
भविता यत्र नीतिस्तु वसुधैव कुटुंबकम्।
स्वीकृता स्यात्तथा सर्वे ज्ञास्यंत्यात्मानमुत्तमम्॥ ८८॥
सदस्यं सन्ततं विश्वपरिवारगतं स्वतः।
सुसंस्कृते समाजे स्याद् ब्रह्मबिंबोदया स्थितिः॥ ८९॥
एतदर्थं नरैः सर्वैर्विधेयोऽभ्यास उत्तमः।
महतः परिवारस्य सञ्चालनविधौ तथा॥ ९०॥

सदस्यतां सुमान्या च गृहीतुमपि सर्वथा।
विनाऽनेन समृद्धिर्नो भवेत् सर्वसुखावहा॥ ९१॥

टीका—अगले दिनों प्रज्ञायुग में समाज का अभिनव निर्माण पारिवारिकता के आधार पर ही होगा। '**वसुधैव कुटुंबकम्**' की नीति अपनाई जाएगी। सभी अपने को विश्व परिवार का सदस्य मानेंगे। मानो विराट ब्रह्म की ही सुंसस्कृत समाज में झाँकी परिलक्षित होने लगेगी। इसके लिए हर किसी को विशाल परिवार का संचालन कर सकने तथा उसका सम्मानित सदस्य बनने का अभ्यास करना चाहिए। बिना इसके विश्व में वैसी समृद्धि संभव नहीं, जो प्रत्येक को सुख दे सके॥ ८७-९१॥

समाप्तिं समयोऽगात्स जयघोषपुरस्सरम्।
सहैव शांतिपाठेन तत्र नीराजनेन च॥ ९२॥
प्रथमस्य दिनस्यायं समाप्तिं प्रययौ ततः।
उपदेशो जनाः सर्वेऽप्यनयाऽमृतवर्षया॥ ९३॥
आत्मनः कृतकृत्यांश्च मन्यमाना मुहुर्मुहुः।
उत्साहिता स्ववासांश्च ययुस्ते दृढपौरुषाः॥ ९४॥

टीका—समय समापन की ओर था। शांतिपाठ, आरती और जयघोष के साथ प्रथम दिन का प्रवचन समाप्त हुआ। विदा होते समय अमृतवर्षा से श्रवणकर्त्ता गृहस्थगण अपने को कृतकृत्य अनुभव कर रहे थे तथा अत्यंत उत्साहित प्रतीत हो रहे थे, उनके पुरुषार्थ में दृढ़ता आ गई थी॥ ९२-९४॥

इति श्रीमत्प्रज्ञोपनिषदि ब्रह्मविद्याऽऽत्मविद्ययोः युगदर्शन युग-साधनाप्रकटीकरणयोः, श्री धौम्यऋषिप्रतिपादिते 'परिवार-व्यवस्था' इति प्रकरणो नाम

॥ प्रथमोऽध्यायः ॥

॥ अथ द्वितीयोऽध्यायः ॥

गृहस्थ जीवन प्रकरण

गंगाद्वारे तु कुंभस्य पर्वणः समये शुभे।
गंगातटे सुसम्मर्दो नृणां धर्मात्मनां महान्॥ १ ॥
वर्द्धते स्म तथा श्रद्धा तीर्थयात्रिनृणां शुभा।
गंगेव गतिशीला च प्रोच्छन्तीव ददृशे॥ २ ॥
संबोध्योपस्थितान् धौम्यो महर्षिः स उवाच च।
जगन्मंगलबोधिन्यां वाचि शान्ते तपोवने॥ ३ ॥

टीका—गंगातट पर हरिद्वार क्षेत्र में संपन्न हो रहे कुंभपर्व के आयोजन में धर्मप्रेमियों की भीड़ बढ़ती ही जा रही थी। गंगा की तरह तीर्थयात्रियों की श्रद्धा भी उमँगती और प्रगतिशील दृष्टिगोचर हो रही थी। शांत तपोवन के समान उस स्थान पर महर्षि धौम्य ने उपस्थित जनों को उद्‌बोधित करते हुए कहा, उनकी वाणी में जगत की कल्याण कामना टपक रही थी॥ १-३ ॥

धौम्य उवाच—

भद्रा ! सद्‌गृहस्थास्तु भवंतः सर्व एव हि।
नात्मानमाश्रमाद्धीनं कस्माच्चिदपि मन्यताम्॥ ४ ॥
लोभमोहविलासानां गृह्यंते दुष्प्रवृत्तयः।
पतनस्य महागर्ते तर्हि पातो नृणां ध्रुवम्॥ ५ ॥
ईदृशावसरा नूनं गृहस्थे संभवन्त्यलम्।
परं विवेकशीलास्तु रक्षन्त्यात्मानमात्मना॥ ६ ॥
दुर्बलाया मनोभूमेः प्रवाहे प्रवहंति ये।
ईदृशीमधिगच्छंति प्रायस्ते पुरुषा गतिम्॥ ७ ॥

कर्त्तव्यधर्मं जानंति नरा ये ते गृहस्थजाम्।
मर्यादां परिजानंतः पालयंति सदा च ताम्॥ ८॥
ईदृशानां नृणामेव कृते सञ्जायते ध्रुवम्।
गृहस्थाचरणं स्वस्य विश्वस्यापि तथैव च॥ ९॥
कल्याणकारको हेतुरुभयोरपि पूरकः।
श्रूयतां सावधानैश्च भवद्भिः समुपस्थितैः॥ १०॥

टीका—महर्षि धौम्य ने कहा—हे भद्रजनों ! आप लोग सद्गृहस्थ हैं। किसी आश्रम से अपने को हीन न समझें। लोभ, मोह और विलास की दुष्प्रवृत्तियाँ अपनाने पर कोई भी निश्चित रूप से पतन के गर्त में गिर सकता है। ऐसे अवसर गृहस्थाश्रम में अपेक्षाकृत अधिक रहते हैं, लेकिन विवेकशील स्वयं को इनसे बचाए रखते हैं। दुर्बल मनोभूमि के प्रचलन- प्रवाह में बहने वाले ही प्रायः ऐसी दुर्गति प्राप्त करते देखे जाते हैं। जिन्हें कर्त्तव्य धर्म का ज्ञान है, वे गृहस्थ की मर्यादा को समझते तथा उसका पालन करते हैं। ऐसों के लिए गृहस्थ का आचरण आत्मकल्याण और विश्वकल्याण के दोनों ही प्रयोजन पूरे करने का निमित्त कारण बनता है। हे उपस्थितजनों! तुम सब सावधान होकर सुनो॥ ४-१०॥

तथ्यानि स्पष्टयन्नाम्नोऽगादीद् धौम्यो महामुनिः।
महत्त्वपूर्णोऽयं धर्मो गृहस्थाश्रमजो ध्रुवम्॥ ११॥
तस्मिन्नुपार्जितायास्तु क्षमताया भवत्यलम्।
उपयोगस्य सच्छिक्षा ह्यनुभूतिश्च सा नृणाम्॥ १२॥
कैशोर्ये स्वास्थ्यसंवृद्धिः शिक्षार्जनमथापि च।
संयमोऽनुभवावाप्तिरनुशासनसंश्रयः॥ १३॥

ईदृशीः क्षमता बहुण्यो लभ्यंतेऽहर्निशं नरैः ।
नियोज्यश्च विकासस्य क्रमश्चापि सुनिश्चितः ॥ १४ ॥
जायते परिपक्वश्च यौवनारंभ एव तु ।
प्रायो नरो दिशां काञ्चिद् गृह्णात्यपि निजां स्वयम् ॥ १५ ॥
विधिना केन कर्त्तव्य उपयोगोऽस्य संततम् ।
परिपक्वत्वभावस्य समावेशोऽत्र विद्यते ॥ १६ ॥
धर्मे गृहस्थजे यत्र प्रविष्टे तु बह्वन्यपि ।
दायित्वानि समायांति सर्वेष्वेव नरेष्वलम् ॥ १७ ॥
अभिभावकवर्गैश्च भरणादौ व्ययस्तु यः ।
कृतस्तस्माद्दृणान्मुक्तौ सहयोगस्तु तैः सह ॥ १८ ॥
कर्त्तव्यः प्रथमं चैतत्कर्त्तव्यं जायते नृणाम् ।
वयस्कैः सहयोगस्तु यत्नश्चोत्थापने सदा ॥ १९ ॥
अनुजानां विधातव्यो भवतीति विवेकिनाम् ।
यौवने समनुप्राप्ते समेषामेव वै नृणाम् ॥ २० ॥

टीका—तथ्यों को और भी स्पष्ट करते हुए महामुनि धौम्य आगे बोले—गृहस्थ धर्म अपने स्थान पर अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। उसमें उपार्जित क्षमता के सदुपयोग का प्रशिक्षण एवं अनुभव प्राप्त होता है। उठती आयु में स्वास्थ्य-संवर्द्धन, शिक्षा अर्जन, अनुभव संपादन, अनुशासन, अवलंबन संयम जैसी अनेकों क्षमताएँ उपलब्ध की जाती हैं। विकासक्रम सुनियोजित किया जाता है। यौवनकाल में प्रवेश करने तक मनुष्य बहुत कुछ परिपक्व हो जाता है तथा स्वयं किसी दिशा की ओर बढ़ना चाहता है। इस परिपक्वता का सदुपयोग किस प्रकार हो, इस विधि-व्यवस्था का गृहस्थ धर्म में समावेश है। उसमें

प्रवेश करने पर कई उत्तरदायित्व कंधे पर आते हैं। अभिभावकों द्वारा किए गए भरण-पोषण में जो ऋण चढ़ा है, उसे उनका हाथ बँटाते हुए उतारना प्रथम कर्त्तव्य है। समान आयु वालों का प्रयत्न सहयोग, छोटों को ऊँचा उठाने, आगे बढ़ाने के लिए सामर्थ्य भर प्रयत्न यह उत्तरदायित्व यौवनकाल में प्रवेश करते ही हर विचारशील को निभाना ही होता है॥ ११-२०॥

ऋणान्यन्यानि विद्यंते दैवान्येवंविधानि तु।
कुटुंबक्षेत्रबाह्यानि यान्यानृण्यवहानि च॥ २१॥
देशधर्मसमाजानां संस्कृतेर्बहुभिस्तु तैः।
अनुदानैर्विकासस्य प्राप्तस्त्ववसरः शुभः॥ २२॥
कुटुंबस्यैव ते लोका व्यवस्थाः समुपार्जितुम्।
न समर्था भवन्त्यत्र सर्वतश्चिंत्यतां यतः॥ २३॥
जीविकोपार्जनं पाणिग्रहणं शिक्षणं तथा।
अनेकानि हि कार्याणि बहूनामिह सन्नृणाम्॥ २४॥
अनुदानैस्तु जायंते ऋणं दैवं समाजगम्।
महत्त्वपूर्णं चैतद्धि नरैः प्रोक्तमृणं वरैः॥ २५॥
तस्मान्मुक्तिश्च सर्वेषां कर्त्तव्यं विद्यते नृणाम्।
समाजस्य समृद्धिश्च विकासो भवतोऽभितः॥ २६॥
यौवनारंभकाले च नरः सर्वो हि विद्यते।
समर्थोऽपि च संपन्नो वैभवं पुरुषैरिदम्॥ २७॥
उपयोक्तव्यमत्रैव दातुं सामाजिकं सदा।
ऋणमेषु दिनेषु स्युः यानि कार्याणि तद्वरम्॥ २८॥

टीका—परिवार क्षेत्र से बाहर भी चुकाने योग्य अनेकानेक देवऋण हैं। देश, धर्म, समाज, संस्कृति के अनेकानेक अनुदानों के सहारे ही मनुष्य को सुविकसित होने का अवसर मिला है। मात्र परिवार के लोग ही जीवन-निर्वाह की सारी व्यवस्थाएँ नहीं जुटा देते। चारों ओर दृष्टि डालकर विचारें, चूँकि आजीविका उपार्जन और सहचर का पाणिग्रहण, शिक्षा अभिवर्द्धन जैसे अनेकानेक सुयोग असंख्यों लोगों के अनुदान से ही हस्तगत होते हैं। यह सब देवऋण अर्थात—समाज ऋण कहलाता है। श्रेष्ठ पुरुषों ने इसे महत्त्वपूर्ण ऋण कहा है। इस ऋण को चुकाना समाज को हर दृष्टि से समृद्ध-सुविकसित बनाना, हर विचारशील का आवश्यक कर्त्तव्य है। यौवन में प्रविष्ट होते समय मनुष्य समर्थता और संपन्नता की स्थिति में होता है। इस वैभव का उपयोग समाज ऋण चुकाने हेतु किया जाना चाहिए। इन दिनों जितने लोकोपयोगी कार्य बन सकें, उतना ही उत्तम है॥ २१-२८॥

कामेच्छाऽपि नरान् सर्वान् विह्वलान् विदधाति सा।
प्रकृतिप्रेरणा चैवं भावना वेगवत्यलम् ॥२९॥
पुंसोरत्रोभयोरेव समुदेति यथा वयः ।
शक्तिप्रवाहमेनं च नियम्यैव विवेकिनः ॥३०॥
प्रयोजनेषु दिव्येषु योजयन्ते परं नहि ।
आत्मनिग्रहहीनैस्तु सामान्यैः शक्यते नृभिः ॥३१॥
अस्मिन्नायुषि लोकास्तदद्यत्वेऽनुभवत्यलम् ।
विवाहस्यानिवार्यत्वं प्रवर्तन्ते च तत्र ते॥ ३२॥
परं विवाहः कर्त्तव्यः शरीरे पक्वतां गते ।
उपार्जने समारब्धे दायित्वं गृह्यतामिदम् ॥ ३३॥

अवयस्कैर्वृत्तिहीनैर्विवाहस्यास्य बंधनम् ।
न स्वीकार्यं तथा नैव दंपत्योर्द्वन्द्वनिश्चये ॥ ३४ ॥
रूपमात्रं न द्रष्टव्यं, गुणं कर्म तथैव च ।
स्वभावः प्रमुखत्वेन विवेच्यः सुखिमिच्छता ॥ ३५ ॥

टीका—कामेच्छा भी प्रचलन-प्रवाह के कारण मनुष्य को बेचैन करती रहती है। प्रकृति प्रेरणा से इस प्रकार की उत्तेजना नर-मादा दोनों में ही अवस्थानुसार उत्पन्न होती है। विचारशील तो इस शक्ति-प्रवाह को रोककर महान प्रयोजनों में भी लगा देते हैं, पर साधारण जनों से, आत्मनिग्रह के अभाव में ऐसा कुछ बन नहीं पड़ता। इसलिए आम लोग इस आयु में विवाह की आवश्यकता अनुभव करते और उसमें प्रवृत्त भी होते हैं। विवाह शरीर के परिपक्व होने पर ही करना चाहिए। उपार्जन आरंभ होने पर ही यह जिम्मेदारी उठानी चाहिए, न कमाने वाले और कम आयु वाले विवाह न करें। जोड़ी निश्चित करने में रूप-सौंदर्य को नहीं, गुण- कर्म-स्वभाव को महत्त्व देना चाहिए॥ २९-३५ ॥

देवानां वस्तुजातानां चाकचक्यस्य वा पुनः ।
आभूषणादिकानां च सम्मर्दस्य प्रदर्शनम् ॥ ३६ ॥
पाणिग्रहणसंस्कारे यदि सम्मिलितं भवेत् ।
कालुष्यं भजते दिव्यमात्मबंधनमादितः ॥ ३७ ॥
अपव्ययानुगाश्चैते धनमुख्या भवंति ये ।
पाणिग्रहणसंस्कारा आसुरास्ते ह्यवाञ्छिताः ॥ ३८ ॥
कारणैरेभिरेवात्र पक्षयोरुभयोरपि ।
अयथाबलमारंभैरविवेकतयाभृशम् ॥ ३९ ॥

आजीवनं भवेन्नूनं मनोमालिन्यमंततः ।
जीवनं स्वर्गतुल्यं च गार्हस्थ्यं नरकायते ॥४०॥

टीका—दहेज, आभूषण, प्रदर्शन, भीड़-भाड़, धूम-धाम जैसे अपव्यय, विवाह-संस्कार के साथ सम्मिलित करने पर वह परमपवित्र आत्मबंधन प्रारंभ में ही कलुषित हो जाता है। ऐसे धन प्रधान विवाहों को आसुर विवाह कहते हैं, ये अवांछनीय है। इन कारणों से दोनों पक्षों के बीच आजीवन मन-मुटाव बना रहता है। चूँकि दोनों अपनी शक्ति से अधिक व्यय करते हैं, विवेक से काम नहीं लेते। इससे स्वर्गतुल्य गृहस्थ जीवन नरक तुल्य बन जाता है॥ ३६-४०॥

पतिः पत्नी च प्राणैस्तु गच्छेतामेकतां सदा।
शरीरेण द्वयं स्यातां स्नेहसम्मानमेव च ॥४१॥
सहयोगं सदापूर्णं विश्वासं च परस्परम्।
अर्पयेतामुभौ नैव गूहेतां किमपि क्वचित् ॥४२॥
त्रुटीः शोद्ध्याश्च विस्मर्याः प्रतिशोधस्य भावना।
न ग्राह्या मतभेदाश्च विचारैस्ते परस्परम्॥४३॥
समाधेयाः स्वपक्षे च हठं नैव समाश्रयेत्।
कोऽपि तत्र विपक्षं च भावयन् स्वं, विचारयेत्॥४४॥
काठिन्यं विवशं भावमन्यपक्षगतं सदा ।
आक्रोशं नाधिगच्छेच्च भग्ने स्वीये मनोरथे॥४५॥

टीका—पति-पत्नी एक प्राण दो देह बनकर रहें। एकदूसरे को परिपूर्ण स्नेह, सम्मान, सहयोग एवं विश्वास प्रदान करें। परस्पर दुराव न रखें। भूलों को सुधारते और भुलाते रहें, प्रतिशोध की भावना न रखें। मतभेदों को विचार-विनिमय से सुलझा लिया करें। कोई पक्ष आग्रहशील हठवादी न बने। अपने को दूसरे की स्थिति में कठिनाई

और लाचारी पर सहानुभूतिपूर्वक विचार करें। अपनी मरजी पूरी न होने पर आक्रोश से न भरें॥ ४१-४५॥

सहिष्णुतां समाश्रित्य मैत्री निर्वाह्यते सदा।
संसारे द्वौ नरौ नैव प्रकृत्या समतां गतौ॥ ४६॥
स्वेच्छया न बलात्तत्र बाध्यं कर्तुं कमप्यहो।
शक्यते संकटोऽभ्येति महँस्तत्र बलाद् यदि॥ ४७॥
कार्यते कार्यमेषोऽत्र संकटश्च तथाविधः।
उदेत्युग्रो व्यथादायी कार्यानुत्पत्तितोपि यः॥ ४८॥
अवसरो नैव दातव्यो मतभेदोदयाय च।
आगतायां स्थितावेवं सहमानैर्विधीयताम्॥ ४९॥
कार्यं नारीव्रतं तत्र पातिव्रत्यं नरोऽपि च।
कुर्यात्पत्नीव्रतं दिव्यं निष्ठातो जीवनं निजम्॥ ५०॥

टीका—सहिष्णुता के सहारे ही मैत्री का निर्वाह होता है। संसार में कोई भी दो मनुष्य एक जैसी प्रकृति के नहीं होते, फिर भी बलपूर्वक किसी को अपनी मरजी पर चलने के लिए बाधित भी तो नहीं किया जा सकता। इस तरह काम करा लेने पर, काम न होने से भी अधिक व्यथित करने वाला बड़ा संकट उत्पन्न होता है। अस्तु, मतभेदों को पनपने का अवसर ही न दिया जाए। यदि ऐसी स्थिति आए भी तो उन्हें सहन करते हुए काम चलाया जाए। नारी पतिव्रत धर्म का एवं नर पत्नीव्रत धर्म का निष्ठापूर्वक निर्वाह करें यही दैवी जीवन है॥ ४६-५०॥

देवतुल्यं विधातुं तद् विवाहात्पूर्वजं तथा।
व्यतिरेकश्च विस्मर्यः कार्यं न संशयादिकम्॥ ५१॥

विवाहस्य दिनादेव प्रारब्धा व्रतशीलता।
जायते भाव्यमेतैश्च नियमैरुभयोः कृते॥ ५२॥
समानैर्विधवानां ते विधुराणामुताऽपि च।
कारणेऽपरिहार्ये च बंधनान्मुक्तिरिष्यते॥ ५३॥
नियमं मन्यतां नैतदपवादं तु केवलम्।
प्रसंगाश्चेदृशा न्यूना एवायांतु कदाचन॥ ५४॥
अर्धांगिनी न त्यक्तव्या नरेणानीतिपूर्वकम्।
दृष्टिं दद्याज्जागरूकां तस्यां देहे निजे यथा॥ ५५॥

टीका—विवाह से पूर्व के व्यतिरेकों को भुला दिया जाए। इस कारण कोई किसी पर अविश्वास या संदेह न करें। व्रतशीलता तो विवाह के दिन से आरंभ होती है। विधवा और विधुर दोनों के लिए एक जैसे अनुशासन होने चाहिए। बंधनमुक्त होने का प्रयत्न अनिवार्य कारण होने पर ही किया जाए। उसे नियम नहीं अपवाद माना जाए। ऐसे प्रसंग कम ही आए, कोई पति अपनी पत्नी को अनीतिपूर्वक परित्याग न करे। इस पर अपने शरीर की देख-भाल की तरह ही कड़ी दृष्टि रहनी चाहिए॥ ५१-५५॥

यौवने पुरुषैः सर्वैरर्थोपार्जनमिष्यते।
उचितं चेदमाभाति तथैवावश्यकं नृणाम्॥ ५६॥
श्रमस्याजीविका ग्राह्या सर्वैरेव नरैरिह।
ग्राह्या पवित्रता चैव तत्रोपार्जनकर्मणि॥ ५७॥
नेदृशं व्यवसायं च कश्चिदेव समाश्रयेत्।
पतनस्य पराभूतेर्गर्ते येन पतेत्स्वयम्॥ ५८॥
अनावश्यके च शृंगारे सज्जायामपि वा पुनः।
अपव्ययुतं नैव प्रदर्शनमथाऽऽचरेत्॥ ५९॥

व्यसनेषु प्रपञ्चेषु गौरवं नैव मन्यताम्।
नैव तस्मिन् व्ययः कार्यः पणकस्यापि कुत्रचित्॥ ६०॥
सरलयैव पद्धत्या जीवनस्य तया सह।
उत्कृष्टं जीवनं बद्धमहंकारि-नरास्तु ये॥ ६१॥
प्रदर्शनरतास्ते तु सदैवात्राधमर्णताम्।
घृणास्पदस्थितिं चैव प्राप्नुवंति निरंतरम्॥ ६२॥

टीका—युवावस्था में सभी को अर्थोपार्जन करना पड़ता है। प्रत्येक मनुष्य के लिए यह उचित भी है और आवश्यक भी। सभी को श्रम की आजीविका उपार्जित करनी चाहिए। उपार्जन में ईमानदारी बरती जाए। कोई ऐसा व्यवसाय नहीं करें, जिससे किसी को पतन-पराभव के गर्त में गिरना पड़ता हो। अनावश्यक शृंगार-सज्जा, अपव्यय भरा प्रदर्शन, आडंबर एवं दुर्व्यसनों में न तो बड़प्पन मानना चाहिए और न उनमें एक पैसा खरच करना चाहिए। सादगी के साथ ही उत्कृष्ट जीवन जुड़ा हुआ है। प्रदर्शन प्रिय अहंकारी आर्थिक तंगी भुगतते, ऋणी रहते और घृणास्पंद बनते हैं॥ ५६-६२॥

कुरीत्याक्रमणं प्रायो गृहस्थे जीवनेऽधिकम्।
जायते पुरुषाः संति तत्र येऽपक्वबुद्धयः॥ ६३॥
मन्यन्ते ते च सर्वस्वं यत्तत्प्रचलनोद्भवम्।
त्यक्तुं तन्न समर्थास्ते मन्यंते स्वकुबुद्धयः॥ ६४॥
दृष्ट्वाऽन्योऽन्यं प्रथास्ताश्च गृह्णन्त्येव निरंतरम्।
सर्वथाऽनुपयोगित्वं वर्तमाने गतास्तु याः॥ ६५॥

टीका—कुरीतियों का आक्रमण प्रायः गृहस्थ जीवन के दिनों में ही होता है। अविकसित मस्तिष्क प्रचलनों को ही सब कुछ मानते हैं

तथा दुराग्रह बुद्धि के कारण वे उन्हें छोड़ नहीं पाते हैं और देखा-देखी उन प्रथाओं को भी अपनाते हैं, जो वर्तमान परिस्थितियों में सर्वथा अनुपयुक्त हो गई है ॥ ६३-६५ ॥

विवाहेषूपजातीनां सीमाबंधनमद्य तु।
समाप्यं यत आसंस्ते वर्णाश्चत्वार एव तु ॥ ६६ ॥
उपजातिवितानं तु मध्यकालस्य विद्यते।
अंधकारयुगस्येयमुत्पत्तिर्भेदवाहिनी ॥ ६७ ॥
प्रदर्शनपराणां तु विवाहप्रीतिभोजयोः ।
अद्यत्वेऽपव्ययानां हि नैवोचित्यं तु वर्तते ॥ ६८ ॥
त्यक्तव्याः सर्व एवैते श्रद्धाहीनास्तथैव च।
प्रदर्शनपरा भोजव्यवस्था मृतकोद्भवा ॥ ६९ ॥
भिक्षाया व्यवसायः स जातिमान्या च मान्यता।
अवगुण्ठनादिकाः सर्वा रीतयो हानिदा अलम् ॥ ७० ॥

टीका—विवाहों में उपजातियों का सीमाबंधन समाप्त होना चाहिए। पुरातनकाल में चार वर्ण ही थे, उपजातियों का जंजाल तो मध्यकाल के अंधकारयुग की भेद-प्रभेदमय देन है। अपव्यय, धूम-धाम भरे प्रीतिभोजों, विवाहों का वर्तमान परिस्थितियों में तुक नहीं। इन्हें बंद किया ही जाना चाहिए। इसी प्रकार श्रद्धाविहीन बड़े मृतक भोज, भिक्षा-व्यवसाय, जाति-पाँत के आधार पर बरती जाने वाली ऊँच-नीच की मान्यता, परदा प्रथा जैसी कुरीतियों में असीम हानि ही है ॥ ६६-७० ॥

हितं नैव तु कस्यापि सिद्ध्येदेभिः क्वचिन्मनाक्।
असंख्या हानयो मात्रं भवंत्येव निरंतरम् ॥ ७१ ॥
अंधविश्वासबाहुल्यं दिवसेष्वेषु विद्यते।
यदाश्रित्य च धूर्तास्तु जनान् लुंठन्ति नित्यशः ॥ ७२ ॥

आत्मानं हि भ्रमादस्माद्रक्षेदन्यानपि स्वकान्।
भाग्यवादे किंवदन्ती श्रितेष्वेतेषु वा पुनः ॥ ७३ ॥
देवेषु पुरुषेष्वेवं भविष्यद् वक्तुषु क्वचित्।
मुहूर्तस्यादिवादे न भ्रांतैर्भाव्यं विवेकिभिः ॥ ७४ ॥

टीका—अंधविश्वासों की इन दिनों भरमार है। उनकी आड़ में धूर्त लोग भोले-भावुकों को ठगते रहते हैं। इस भ्रम-जंजाल से स्वयं बचना और दूसरों को बचाना चाहिए। भाग्यवाद चित्र-विचित्र किंवदंती, आश्रित देवी-देवताओं का प्रचलन, भविष्य कथन, मुहूर्तवाद जैसी भ्रांतियों में विज्ञजनों को नहीं ही फँसना चाहिए॥ ७१-७४ ॥

गृहस्थजीवने चाऽत्र संबद्धातिथि-सत्कृतिः।
वर्तितव्यो नातिवादस्तथाप्यत्र कदाचन ॥ ७५ ॥
सख्यव्याजेन येष्वत्र गृहेषु मित्रमंडली।
संतिष्ठते सदा सत्त्वहीनता तेषु जृंभते॥ ७६ ॥
समयो नश्यति द्रव्यं नश्यत्येतेन संततम्।
विकृतीनां प्रवेशश्च कुटुंबे जायतेऽञ्जसा॥ ७७ ॥
आवश्यकेन कार्येण विना नैव कदाचन।
आतिथ्यमाचरेदत्र निष्क्रियाणां नृणां बुधः॥ ७८ ॥
गृहेषु नैव चान्येषां गच्छेद् व्यर्थं निरंतरम्।
समयस्य विनाशस्तु मित्रैः सह न युज्यते॥ ७९ ॥
हानयो विपुलाः संति दिनेष्वेतेषु सर्वथा।
जीविका कष्टयुक्तेषु विधिनाऽनेन निश्चितम्॥ ८० ॥
सन्मित्राणामभावस्तु प्रायोऽद्यत्वे विलोक्यते।
भावुकाश्च दिशाहीना वर्धंते चाऽन्यसंगताः॥ ८१ ॥

टीका—गृहस्थ जीवन के साथ अतिथि सत्कार जुड़ा हुआ है, पर उसमें अतिवाद नहीं बरता जाना चाहिए। जिन घरों में दोस्ती के नाम पर निरर्थक व्यक्तियों की मंडली जमी रहती है, उनका दिवाला निकल जाता है, समय नष्ट होता है, पैसों की बरबादी होती है। इस अवांछनीय घुसपैठ से परिवार में अनेकों विकृतियाँ अनायास घुस पड़ती हैं। इसलिए बिना आवश्यक काम के निठल्ले लोगों का आतिथ्य नहीं करना चाहिए, न ही दूसरों के घरों में बिना कारण बार-बार जाना चाहिए। मित्रों के साथ आवश्यक समय बरबाद करना किसी भी प्रकार उचित नहीं। इन दिनों तो उससे हानि-ही-हानि है। भले मित्रों का अब एक प्रकार से अभाव ही हो गया है। दिशाहीन भावुक पुरुषों की संख्या बढ़ रही है, जो औरों को भी बहा ले जाते हैं॥ ७५-८१ ॥

संयुक्तस्य कुटुंबस्य रीतिर्योग्यैव सर्वथा।
कर्त्तव्यानि विभक्तानि दायित्वानि नृणां सदा॥ ८२ ॥
भवेयुः स्वस्वदायित्वं मर्यादाऽपि च स्वतः।
निर्वहेयुः समे नो चेन्मनोमालिन्यमत्र तत् ॥ ८३ ॥
पृथग्भावोऽपि सद्यस्तु समुदेति भवेत्ततः।
कलहापेक्षया चाल्पकुटुंबस्थिति-बाध्यता ॥ ८४ ॥

टीका—संयुक्त परिवार प्रथा हर दृष्टि से उपयोगी है, पर उसमें कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व बँटे रहना चाहिए और हर सदस्य को अपनी-अपनी जिम्मेदारियों तथा मर्यादाओं का पालन करना चाहिए। इसके बिना मनोमालिन्य और बिखराव पैदा होता है। ऐसी स्थिति में निरंतर के कलह की अपेक्षा छोटे-छोटे अलग परिवार बसाने की विवशता अपनानी पड़ती है॥ ८२-८४ ॥

संयुक्तस्य कुटुंबस्य लाभश्चात्र तदैव तु।
प्राप्यते यदि कर्त्तव्यमर्यादानां विनिर्मिता॥ ८५॥
आचारसंहिता सा स्यात्पाल्येतापि जनैः स्वयम्।
वयोऽधिकाश्च मान्याः स्युः परिवारे सदैव ते॥ ८६॥
सौविध्यस्य साहाय्यस्य चिंता तेषां विशेषतः।
कर्त्तव्या लाभ आप्तव्यस्तेषामनुभवैः सदा॥ ८७॥
परामर्शं निदेशं तमौचित्यनिकषे स्वयम्।
पालयेत्संपरीक्ष्यैव यतो वृद्धजनेष्वपि ॥ ८८॥
बहूनां मान्यता इच्छा स्वभावश्च समान्यपि।
विवेकनिकषोत्तीर्णान्यत्र नैव भवंति तु॥ ८९॥
ईदृश्यां च दशायां तु निदेशान् कलहं विना।
शक्यते चाञ्जसा कर्तुमश्रुतान् वाप्युपेक्षितान् ॥ ९०॥
सम्मानं च सुरक्षा च सेवा भावोऽन्यदेव तु।
विद्यते चाविचार्येव निदेशपरिपालनम् ॥ ९१॥
भिन्न एव महत्त्वं च विवेकौचित्ययोस्तु तत्।
श्रेष्ठमेव परामर्शाद् वृद्धानामतिरिच्यते ॥ ९२॥

टीका—संयुक्त परिवारों का लाभ तभी मिलता है, जब कर्त्तव्यों एवं मर्यादाओं की आचार संहिता बने और उसका विधिवत् पालन हो सके। परिवार संस्था में वयोवृद्धों को समुचित सम्मान मिलना चाहिए। उनकी सुविधा और सहायता का भी ध्यान रखना चाहिए। उनके अनुभवों से लाभ उठाना चाहिए, किंतु परामर्श या निर्देश को औचित्य की कसौटी पर कसने के उपरांत ही पालन करना चाहिए।, वृद्धों में से कितनों की ही मान्यताएँ, आदतें, इच्छाएँ ऐसी होती हैं, जिन्हें

विवेक की कसौटी पर कसने पर खरा नहीं पाया जाता। ऐसी दशा में निर्देशों को बिना विग्रह खड़ा किए हुए, उन्हें अनसुना या उपेक्षित भी किया जा सकता है। सम्मान, रक्षा, सुरक्षा, सेवा एक बात है और आँखें मूँदकर निर्देश मानने के लिए बाधित होना सर्वथा दूसरी। विवेक एवं औचित्य का महत्त्व सर्वोपरि है। उसका स्थान वृद्धजनों के परामर्श से भी अधिक है॥ ८५-९२ ॥

गृहस्थजीवनस्यातो महिमा स मतः स्वतः।
आश्रमाणामिव श्लाघ्यः शोभनः सुप्रशंसितः॥ ९३ ॥
उच्चादर्शं तु गृह्णन्ति लोकसेवा-विधेस्तु ये।
जनास्तेषां कृते नैवानिवार्यं विद्यते परम् ॥ ९४ ॥
सर्वसाधारणानां तु कृतेऽस्त्येव जनैर्यतः।
विकासश्च कुटुंबस्थः सर्वेषामेव जायते॥ ९५ ॥
गृहस्थेन ततः सर्वे संबद्धाः संति निश्चितम्।
अतस्तत्सूत्रसंबद्धकर्त्तव्यपरिपालनम् ॥ ९६ ॥

टीका—गृहस्थ जीवन की महिमा भी अन्य आश्रमों की तरह ही सुंदर, प्रशंसनीय एवं श्लाघ्य मानी गई है। लोकसेवा का उच्च आदर्श अपनाने वालों के लिए वह अनिवार्य नहीं तो भी सर्वसाधारण के लिए वही उपयुक्त है। हर किसी का जन्म और विकास तो परिवार के अंतर्गत ही होता है, इसलिए उसके साथ हर कोई जुड़ता है। अतएव उस संबंधसूत्र के साथ जुड़े हुए कर्त्तव्यों का परिपालन ही श्रेष्ठ माना जाता है॥ ९३-९६ ॥

उद्बोधनं प्रियं जातं श्रोतृणामद्य यच्छ्रुतम्।
शांतिपाठनमस्कारजयशब्दैरथापि च ॥ ९७ ॥

नीराजनेन सार्धं च समाप्तं सत्रमुत्तमम् ।
यथाकालं परं गन्तुमुत्थातुं चापि नो मनः ॥ १८ ॥
कस्यापि कुरुते तत्र साहसं नित्यकर्मणः।
व्यवस्था च व्यधात् सर्वान्विवशान् गंतुमत्र च॥ १९ ॥

टीका—आज का उद्‌बोधन जनों को और भी प्रिय लगा। शांतिपाठ, आरती, जयकार, अभिवंदन के उपरांत नियम समय पर सत्र समाप्त हुआ, पर उठने व जाने के लिए किसी का मन नहीं कर रहा था। नित्यनियम की व्यवस्था ने ही उन्हें विदा होने के लिए विवश किया॥ १७-१९ ॥

इति श्रीमत्प्रज्ञोपनिषदि ब्रह्मविद्याऽऽत्मविद्ययोः युगदर्शन युग-साधनाप्रकटीकरणयोः, श्री धौम्यऋषिप्रतिपादिते 'गृहस्थ जीवन' इति प्रकरणो नाम

॥ द्वितीयोऽध्यायः ॥

॥ अथ तृतीयोऽध्यायः ॥

नारी-माहात्म्य प्रकरण

सत्रप्रवचने तत्र तृतीयस्य दिनस्य तु ।
अभूदुपस्थितिः सा च श्रोतणां महती नृणाम्॥ १ ॥
संख्या प्रतिदिनं विज्ञजनानां वर्द्धते यतः।
अन्वभूवन्निदं सर्वे प्रथमं यद् गृहस्थजः॥ २ ॥
धर्मोऽपि समतुल्यः स योगसाधनया ध्रुवम्।
निर्वाहेण च तस्यैव सीमितानामिह स्वयम्॥ ३ ॥
मर्यादानामुदाराणामनुरूपतया नरः ।
पुण्यस्य परमार्थस्य योग्यतामेति सत्वरम्॥ ४ ॥

स हैवावधिकालेऽस्मिन्नभ्यसंश्च पराक्रमम्।
प्रतिभोपार्जनेनैव परार्थं प्रचुरं सह ॥ ५ ॥
कर्तुं क्षमो भवेदत्र श्रोतुं च वचनामृतम्।
औत्सुक्यं सन्नृणां वीक्ष्य धौम्यः संतोषमागतः ॥ ६ ॥
यच्छ्रुतं सावधानैस्तु नरैर्मे प्रतिपादनम्।
सार्थक्यं स्व प्रयासस्य अन्वभूत्स प्रहर्षितः ॥ ७ ॥

टीका—तीसरे दिन के सत्र प्रवचन में श्रोताओं की और भी अधिक उपस्थिति थी। विज्ञजनों की संख्या प्रतिदिन बढ़ती जा रही थी। लोगों ने प्रथम बार यह अनुभव किया कि गृहस्थ धर्म भी योगसाधन के समतुल्य है और उसका निर्वाह निर्धारित उदार मर्यादाओं के अनुरूप करने से मनुष्य पुण्य-परमार्थ का भागी बन सकता है। साथ ही इस अवधि में पराक्रम का अभ्यास करते हुए प्रतिभा अर्जन के साथ-साथ प्रचुर परमार्थ भी कर सकता है। अमृत वचन सुनने के लिए आतुर जनसमुदाय की उत्सुकता देखकर महर्षि धौम्य को संतोष हो रहा था, कि उनका कथन-प्रतिपादन ध्यानपूर्वक सुना गया। वे अपने प्रयास की सार्थकता अनुभव कर रहे थे॥ १-७॥

धौम्य उवाच—

भद्रजनाः! गृहिण्याश्च महत्त्वं वर्णितं परम्।
वस्तुतस्तु, यतो धुर्या गृहिणी परिवारगा ॥ ८ ॥
उत्कृष्टत्वे निकृष्टत्वे तस्या एव गृहस्थजम्।
उत्थानं पतनं नूनमाश्रितं नात्र संशयः ॥ ९ ॥
तस्याः सहायकस्त्वेष पुरुषः केवलं सदा।
साधनान्यर्जयन्नस्यापि साहाय्यं विदधाति तु ॥१०॥

शय्या त्यागात्समारभ्य यावद्रात्रौ समेऽपि च।
शेरते तावदेवेयं गृहेऽभिरमतेऽभितः ॥११॥
तथा निरन्तरं तस्य परिवारस्य मध्यगा।
छायेव बद्धमूला सा प्रशस्तैवाधिका हि सा॥१२॥
गृहिणी विद्यते तेन गृहलक्ष्मीरसंशयम्।
मंदिरस्थेव देवी सा गेहे मान्या समैरपि ॥१३॥
समानमनुदानं च तथैवास्यै विधीयताम्।
प्रत्येकस्य गृहस्थस्य कर्त्तव्यं प्रथमं त्विदम् ॥१४॥
मातुः पत्न्या भगिन्या वा कन्याया वाऽपि संस्थिता।
रूपे नारी यदा यत्र तत्र तां स्वावलंबिनीम् ॥१५॥
स्वस्थां प्रसन्नां संस्कारयुतां च प्रतिभामयीम्।
शिक्षितां मानवः कर्तुं न्यूनतां न समाश्रयेत्॥१६॥
प्रयासाः सर्वदा कार्या नरैरेवं विधास्तथा।
ग्राह्या चाल्पाऽपि नोपेक्षा तेषु हानेर्भयादिह ॥१७॥

टीका—महर्षि धौम्य ने कहा—हे भद्रजनों ! शास्त्रों में नारी की बड़ी महत्ता वर्णित की गई है। नारी परिवार की धुरी है, उसी की उत्कृष्टता-निकृष्टता पर गृहस्थ का उत्थान पतन निर्भर रहता है, इसमें जरा भी संदेह नहीं है। पुरुष तो उसका सहायक मात्र है। वह साधन जुटाता और सहयोग देता है। प्रातः शय्या त्याग से लेकर जब तक रात्रि; घर के सदस्य सोते हैं, तब तक होने वाले घर के प्रत्येक कार्य में प्रतिक्षण व्यस्तता इसी में देखी जाती है। निरंतर उस परिवार पर छाई रहने के कारण उसी की प्रशंसा अधिक है। नारी गृहलक्ष्मी है। उसे घर के देवालय में अवस्थित प्रत्यक्ष देवी माना जाना चाहिए।

वैसा ही सम्मान एवं अनुदान भी उसे प्रस्तुत किया जाना चाहिए। प्रत्येक सद्गृहस्थ का प्रथम कर्त्तव्य हैं कि माता, भगिनी, पत्नी और कन्या के जिस भी रूप में नारी रहे, उसे स्वस्थ, प्रसन्न, शिक्षित, स्वावलंबी एवं सुसंस्कृत प्रतिभावान बनाने में कुछ भी कमी न रखें। इस प्रकार के प्रयत्न निरंतर जारी रहें। उन प्रयासों की तनिक भी उपेक्षा न करें। अन्यथा महान हानि का भय बना रहेगा॥ ८-१७॥

गृहिणी समुन्नतैवात्र परिवारं तु स्वर्गिणम्।
विधातुं हि समर्थास्ति ततोऽस्याः क्षमतोदये ॥१८॥
यः श्रमो यो मनोयोगो धनं तु विनियोगताम्।
आश्रयंति समायाति तदिहासंख्यतां गतम्॥१९॥
श्रेयो मानं च ये मर्त्या गृहिण्यै ददति स्वयम्।
अपेक्षयानुदानस्यासंख्यं प्रतिफलं तु ते ॥२०॥
प्राप्नुवंति कुटुंबं तद् यतः प्रतिफलं द्वयोः।
नार्या नरस्य संयुक्ताऽनुदानानां हि निश्चितम्॥२१॥
गृहिण्या भूमिका श्रेष्ठा कनिष्ठा च नरस्य तु।
खनिर्नारी नराः सर्वे खनिजा इति मन्यताम् ॥२२॥
जायंते धातवः सर्वे खनितुल्याः खनेर्ध्रुवम्।
कृष्णाङ्गाराश्च लौहाश्च ताम्रं चंद्रो हिरण्मयम्॥२३॥
खनेः स्वस्वानुकूलाया उद्भवंति यथा तथा।
श्रेष्ठा नार्यः सुतान् श्रेष्ठाञ्जनयंति गुणान्वितान्॥२४॥
कर्मशीलान् सुशीलांश्च प्रतिबिंबानिव स्वकान्।
मलयाचलभूमिः सा यत्रस्था गन्धिनः समे ॥२५॥

टीका—समुन्नत नारी ही परिवार को स्वर्ग बना पाती है। उसकी क्षमता विकसित करने में लगाया गया श्रम, मनोयोग एवं धन असख्यों गुना होकर लौटता है। नारी को श्रेय-सम्मान देने वाले अपने अनुदान की तुलना में असंख्य गुना प्रतिफल प्राप्त करते हैं। परिवार नर और नारी के संयुक्त अनुदानों का प्रतिफल है। इसमें नारी की भूमिका वरिष्ठ और नर की कनिष्ठ है। नारी खदान है, नर उसमें से निकलने वाला खनिज। खदान जैसी होती है, धातुएँ उसी स्तर की उसमें से निकलती हैं। कोयला, लोहा, ताँबा, चाँदी, सोना आदि अपने-अपने ढंग से खदानों में से ही निकलते हैं। श्रेष्ठ स्तर की नारियाँ अपने जैसे गुण-कर्म-स्वभाव की संतानें जनती हैं। वे (चंदन वृक्ष) मलयाचल भूमि की तरह है। उनके सान्निध्य में बड़े-छोटे उसी प्रकार की सुगंध से महकने लगते हैं॥ १८-२५ ॥

स्नेहसौजन्ययोर्नार्यां बाहुल्यं प्राकृतं स्वतः।
व्यक्तिनिर्माणसामर्थ्यं द्वयमेतन्निगद्यते ॥ २६ ॥
यंत्ररेखाश्रिता नूनं भूषणादिविनिर्मितिः ।
कुंभकारो यथा चक्रं स्वांगुली-कौशलेन सः ॥ २७ ॥
अर्हति पात्रतां नेतुं मृदं क्लिन्नां शनैः शनैः।
तथा कुटुंबगान् नारी सर्वान् संस्कर्तुमर्हति॥ २८ ॥
देव्या सोपमिता नारी प्राधान्याद् यत एव ते।
देवा अनुचरास्तस्या देव्या अत्रापि सा स्थितिः॥ २९ ॥
महत्त्वपूर्णकर्मैतत् यो नार्या प्रतिभोदयः ।
कल्याणं निहितं सृष्टे समायाः कर्मणीह तु॥ ३० ॥
अभ्यर्थना च देवीनामाख्याता या मतं बहु।
तस्या माहात्म्यमत्रैषु शास्त्रेषु वस्तुबोधकम्॥ ३१ ॥

तुष्यन्ति शीघ्रं ताः सर्वा वरदानं ददत्यलम्।
प्रत्यक्षं देवतो नार्यो द्रष्टुमेतच्च संभवम्॥ ३२॥

टीका—नारी में स्नेह-सौजन्य की प्रकृतिप्रदत्त बहुलता है। इसे व्यक्तियों के निर्माण की प्रमुख क्षमता कहा गया है। जैसा साँचा होता है, वैसे ही उपकरण-आभूषण ढलते हैं। कुम्हार अपने चाक पर उँगलियों के कौशल से गीली मिट्टी को किसी प्रकार के भी बरतन में बदल सकता है, उसी प्रकार नारी अपने पिता और परिवार के छोटे-बड़े सदस्यों को इच्छानुरूप ढालने-बदलने में समर्थ है। उसे देवी ही उपमा और प्रधानता दी गई है। देवता उनके अनुचर होते हैं, वही स्थिति यहाँ भी समझनी चाहिए। नारी की प्रतिभा को निखारना, बहुत बड़ा काम है। इसमें समस्त सृष्टि का कल्याण सन्निहित है। देवियों की अभ्यर्थना का शास्त्र में बहुत माहात्म्य बताया गया है, जो वस्तुतः यथार्थ है। वे शीघ्र संतुष्ट होती और अधिक वरदान देती हैं। प्रत्यक्ष देवियों के रूप में नारी समुदाय को देखा जा सकता है॥ २६-३२॥

मणयोऽपि च पंके चेन्मग्नास्तर्हि तिरस्क्रियाम्।
उपेक्षां च लभंतेऽत्र तथा तासु सतीष्वपि ॥ ३३॥
विशेषतासु नार्यश्चेत्कृताः स्युर्नहि संस्कृताः।
प्रतीयंते ह्ययोग्यास्ता अविकासस्थिताः सदा॥ ३४॥
मलिनोऽसंस्कृतो हीरः काच एव हि दृश्यते।
टंकनादेव सौन्दर्यं भ्राजते मूल्यमाव्रजेत् ॥ ३५॥
सम्मुखे दर्पणस्यैष यथारागस्तथैव तु ।
छायासा दृश्यते तस्मिंस्तथास्थितिगता सदा ॥ ३६॥
उत्तमा मध्यमा हेया नारी सा दृश्यते क्रमात्।
मौलिकं तु स्वरूपं तत्तस्याः स्वच्छं न संशयः॥ ३७॥

बुधैः प्रोक्ता विचार्यैव नारीह भावनामयी।
बाधिता स्यान्न तस्यास्तु भावनैषा कदाचन॥ ३८॥
स्नेहं सम्मानमुत्साहदानं प्रशिक्षणं तथा।
सहयोगं च नारी चेत्प्राप्नुयात्तर्हिं निश्चितम्॥ ३९॥
उच्चतां स्तर आगच्छेत्तस्या सोऽप्यञ्जसैव तु।
कल्पवृक्षोऽस्ति नारी तु तां यो यत्नेन सिंचति॥ ४०॥
पुष्पाणि तस्याश्छायायां स्थितः स्वान् स मनोरथान्।
इच्छितान् वरदानान् वै प्राप्नोत्येव सुखावहान्॥ ४१॥

टीका—मणि भी कीचड़ में फँसी रहने पर उपेक्षित और तिरस्कृत रहती है। मौलिक विशेषताएँ होते हुए भी यदि नारी को निखारा-उभारा न जाए तो वह भी पिछड़ी स्थिति में पड़ी रहती है व अयोग्य प्रतीत होती है। मैला और अनगढ़ हीरा भी काँच जैसा प्रतीत होता है। खरादने पर ही उसका सौंदर्य चमकता और मूल्यांकन होता है। दर्पण के सम्मुख जैसा भी रंग होता है, वही उसमें छाया दीखती है। परिस्थितियों के अनुरूप ही नारी उत्कृष्ट, मध्यम और हेय स्तर जैसी दीखती है। उसका स्वरूप स्फटिकमणि की तरह स्वच्छ है। यह एक सुविचारित तथ्य है कि नारी भावना प्रधान है। उसकी भावना को चोट न लगने पाए। उसे समुचित स्नेह, सम्मान, प्रोत्साहन, प्रशिक्षण और सहयोग दिया जाए तो उसका स्तर ऊँचा उठाना तनिक भी कठिन नहीं। नारी कल्पवृक्ष है, जो उसे लगनपूर्वक सींचता-पालता है, वह उसकी छाया में बैठकर मनोरथ पूरा करता और इच्छित प्रतिफल वरदान रूप में प्राप्त करता है॥ ३३-४१॥

विवेकिनां हि दायित्वमिदं यन्न्यूनता नहि।
नारीशिक्षाविधौ स्याच्च दायित्वं प्रतिबोधिता॥ ४२॥

निर्वाहाय तथैषां च मार्गदर्शनमिष्यते ।
सहयोगश्च दातव्यः शिक्षा योग्याऽप्यपेक्षते ॥ ४३ ॥
नार्याः शिक्षणमेतस्या बौद्धिकं व्यवहारगम् ।
भवेदीदृशमेवं न यदाश्रित्य परिस्थितीः ॥ ४४ ॥
प्रतिकर्तुं समर्था सा भवेदिह तथा निजम् ।
परिवारं विधातुं च प्रोन्नतं प्रभवेदपि ॥ ४५ ॥
शिक्षां निरर्थकां दत्त्वा भाररूपां नहि श्रमम् ।
समयं चापि तस्यास्तु नाशितुं युज्यते क्वचित् ॥ ४६ ॥
भवेन्नारी स्वावलम्बं श्रिता शीलयुता भवेत् ।
न संकोचं गता चैवं भवेद् यच्छोचितुं तथा ॥ ४७ ॥
वक्तुं न क्षमता तिष्ठेद्दासीभावं व्रजेन्न च ।
गृहलक्ष्म्याः स्वरूपे सा स्वतो विकसिता भवेत् ॥ ४८ ॥
कौशलं चेदृशं तस्या भवेद् यद् यद्यपेक्ष्यते ।
अर्थोपार्जनमेषां तत्कर्तुं च प्रभवेदपि ॥ ४९ ॥
नराश्रयं विनैवैषा स्वयं दद्यादपि स्वकान् ।
आश्रयं सहयोगं च सर्वानन्यानपि क्वचित् ॥ ५० ॥

टीका—विचारशीलों का यह दायित्व है कि नारी शिक्षा में कमी न रहने दी जाए। उसे अपने महान उत्तरदायित्वों का ज्ञान कराया जाए। उसके निर्वाह के लिए मार्ग दिखाया जाए और सहयोग दिया जाए। उसके अनुरूप प्रशिक्षण व्यवस्था की नितांत आवश्यकता है। नारी का बौद्धिक एवं व्यावहारिक शिक्षण ऐसा हो, जिसके आधार पर उसे प्रस्तुत परिस्थितियों का सामना करते हुए अपने संपर्क-परिकर को समुन्नत कर सकना संभव हो सके। निरर्थक शिक्षा का

भार लादकर, उसका श्रम बरबाद न किया जाए, नारी को स्वावलंबी बनने दिया जाए। वह शीलवती बनी रहे, किंतु इतनी संकोची भी न बने जिससे सोचने, बोलने और करने की क्षमता ही चली जाए। उसे दासी न बनाया जाए। गृहलक्ष्मी के रूप में विकसित किया जाए। उसका कौशल ऐसा रहना चाहिए कि आवश्यकतानुसार उपार्जन भी कर सके। पराश्रित न रहकर वह समयानुसार दूसरों को आश्रय एवं सहयोग भी प्रदानकर सके॥ ४२-५० ॥

परिवारस्य कार्येषु नरः कुर्यात् सदैव च ।
सहयोगं गृहिण्याः सा समयं येन चाप्नुयात्॥ ५१ ॥
व्यवस्था स्वच्छता हेतोः सज्जा हेतोश्च सद्मनः।
वार्त्तालापे कलानां च कौशलेऽथापि सा स्वयम्॥ ५२ ॥
समस्यानां समाधाने भूमिकां निर्वहेत्स्वकाम् ।
अतिव्यस्तस्थितौ स्यान्न किमप्याचरितुं क्षमा ॥ ५३ ॥
कुटुंबदिनचर्याऽथ व्यवस्थाया विधिश्च सा।
परंपरा तथैवं स्याद् येन पाकविधावुत ॥ ५४ ॥
स्वच्छतायां न नष्टः स्यात्सर्वोऽस्याः समयो महान्।
ईदृशी सुविधा यत्र तत्रत्या गृहिणी नहि ॥ ५५ ॥
अनुभवत्यथ काठिन्यं विकासं योग्यतामपि।
सुसंस्कारानवाप्तुं यत् कुटुंबाय महत्त्वगम्॥ ५६ ॥
नार्याः श्रमस्य कर्त्तव्य उपयोगो विशेषतः ।
युगं नवं ततो नारीप्रधानं भविता शुभम् ॥ ५७ ॥
सृजनस्य नवस्यास्यां क्षमता भावनात्मिका ।
बाहुल्येनास्ति चागामिदिवसेषु भविष्यति॥ ५८ ॥

समाजो भावना मुख्यः स्तरस्याऽस्य विनिर्मितेः ।
क्षमता मुख्यतो दत्ता स्रष्टा नार्यां न संशयः ॥ ५९ ॥
निर्माणाय युगस्यापि नेतृत्वाय स्त्रियस्ततः ।
नः प्रमादो विलंबो वा कार्यो वर्चः परिष्कृतौ ॥ ६० ॥

टीका—घर-परिवार के कार्यों में पुरुष नारी का हाथ बँटाए। उन्हें इतना अवकाश दें कि परिवार की व्यवस्था, स्वच्छता, सज्जा ठीक प्रकार रख सके। वार्त्तालाप कला-कौशल एवं समस्याओं के समाधान में अपनी भूमिका निभा सके। घोर व्यस्तता की स्थिति में तो वे कुछ भी न कर सकेगी। पारिवारिक दिनचर्या, विधि-व्यवस्था और परंपरा ऐसी रहे, जिसमें उसे पाकशाला-स्वच्छता में ही सारा समय न खपाना पड़े। ऐसी सुविधा जहाँ होती है, वहाँ नारी को सुविकसित, सुसंस्कृत एवं सुयोग्य बनने में विशेष कठिनाई नहीं रह जाती। यह पारिवारिक हित में बहुत महत्त्वपूर्ण है नारी श्रम का अधिक महत्त्वपूर्ण उपयोग करने की आवश्यकता है। हे सज्जनो! नवयुग नारी प्रधान होगा। नवसृजन की भावनात्मक क्षमता की उसी में बहुलता है। अगले दिनों भावना प्रधान समाज बनेगा। उस स्तर के निर्माण की क्षमता नारी में ही स्रष्टा ने प्रमुखतापूर्वक प्रदान की है, इसमें संदेह नहीं। युग का निर्माण और नेतृत्व करने के लिए उसका वर्चस्व करने में न विलंब किया जाए, न प्रमाद बरता जाए॥ ५९-६० ॥

योग्यदायित्वनिर्वाहे स्वस्थस्य वपुषस्तथा।
तुलितायाः मनोभूमेरनुभूतेस्तथैव च ॥ ६१ ॥
अपेक्षा कौशलस्यास्ति तेन चावसरस्त्वयम्।
नार्या लभ्येत यत्नोऽत्र नूनं कर्त्तव्य इष्यते॥ ६२ ॥

सुविधाश्च समा एता संयुक्ताः स्युस्तदैव तु।
नारीं पुराणकालस्य स्तरं प्रापयितुं भवेत्॥ ६३॥
वातावृतिं समानेतुं कृतस्येव युगस्य तु।
उचितां भूमिकां वोढुं गृहिणी तून्नतस्तरा॥ ६४॥
विधेया यत्नतो नारी नरेणैव गतेषु तु।
दिनेष्वनीतियुक्तैश्च प्रतिबंधैः सुपीडिता॥ ६५॥
नीता दुर्गतिमद्यापि न सा तस्मादुदेत्यहो।
अर्द्धांगनीदशाहेतोः संकटैर्नर आवृतः॥ ६६॥
प्रायश्चित्तमिदं तस्योत्साहेन द्विगुणेन हि।
तस्या उत्थानकर्मैतद् विधेयं यत्नतो नरैः॥ ६७॥

टीका—महत्त्वपूर्ण उत्तरदायित्वों के निर्वाह में स्वस्थ शरीर, संतुलित मनोबल, अनुभव एवं कौशल अपेक्षित है। नारी को इस योग्य बनने का अवसर मिलना आवश्यक है। ये सभी सुविधाएँ जुटाने से ही नारी को प्राचीनकाल की तरह समुन्नत स्तर तक पहुँचाया जा सकेगा। सतयुग का वातावरण वापस लाने के लिए नारी को उपयुक्त भूमिका निभा सकने योग्य स्तर का बनाया जाना चाहिए। पिछले दिनों नारी को अनीति भरे प्रतिबंधों में जकड़कर नर ने ही उसे दुर्गतिग्रस्त किया है। इसी से आज भी वह उठ नहीं पा रही है तथा अर्द्धांगिनी की दुर्दशा से नर भी संकटों से घिरा है। उसका प्रायश्चित यही है कि दूने उत्साह से उसके उत्थान की व्यवस्था बनाई जाए॥ ६१-६७॥

अबलात्वाच्च नार्यास्तु नात्याचारस्तु कश्चन।
कोमलांग्या भवेदित्थमेतदर्थं च निश्चितम्॥ ६८॥

समस्तस्य समाजस्य भाव उद्‌बुद्ध इष्यते।
अनीत्याश्रयिणो नैव नराः स्युर्दण्डवञ्चिताः॥ ६९॥
व्यवस्था चेदृशीकार्या मूर्द्धन्यैः पुरुषैः सदा।
सामाजिकं च दायित्वं तैरुह्यं स्वयमेव च॥ ७०॥

टीका—नारी की सहज दुर्बलता के कारण उस पर कहीं कोई अत्याचार न होने पाए, इसके लिए समस्त समाज की जागरूकता आवश्यक है। अनीति करने वाले दंड से बचने न पाएँ, ऐसी व्यवस्था, मूर्द्धन्यों को साहसपूर्वक बनानी चाहिए, व्यवस्था संबंधी सामाजिक दायित्व स्वयं ही उन्हें स्वीकार करने चाहिए॥ ६८-७०॥

संख्यार्द्धे दलितायां तु स्थितौ संप्रेष्यमानवान्।
सर्वानेव पराभूतेः पतनस्य स्थितौ स्थितान्॥ ७१॥
कृत्वाऽनर्थः कृतो यस्तु तमग्रे नाचरेदिह।
अर्द्धनारीश्वरा जातिर्मानवानां दलोपमा॥ ७२॥
अधिकाराः समानास्ते दायित्वानि समानि च।
उभयोः शकटस्येव चक्रयोः सहगामिता॥ ७३॥
अपेक्ष्यते न कश्चिच्च बाधेतान्यं कदाचन।
कृताभिस्त्रुटिभिः शिक्षामधिगत्य झटित्यलम्॥ ७४॥
अनाचारस्य नाशस्तु भवितव्य इहाधुना।
प्रतिभा परिचयं दातुं लभेतावसरं च सा॥ ७५॥
संदर्भेस्मिन्नरस्यास्ति दायित्वमधिकं स्वयम्।
हानिः प्राप नरः स्वाभ्यस्त्रुटिभ्यो विपुलामपि॥ ७६॥
परिष्कारे त्रुटीनां च कुर्यात्तत्परतां ततः।
नर एव लभेतापि लाभ सोऽधिकमप्यतः॥ ७७॥

टीका—आधी जनसंख्या को पददलित स्थिति में धकेल कर समूचे मानव समुदाय को पतन-पराभव की स्थिति में रखने का अनर्थ अब आगे और न किया जाए। नर और नारी दोनों ही बीज के दो दलों के समान मनुष्य जाति के अविच्छिन्न अंग हैं। दोनों के अधिकार और उत्तरदायित्व समान हैं। दोनों के मध्य गाड़ी के पहियों का-सा सहयोग होना चाहिए। कोई किसी पर हावी होने का प्रयत्न न करे। पिछली भूलों से शिक्षा लेकर इस संदर्भ में चलते रहे अनाचार का अब अंत होना चाहिए। उसे अपनी प्रतिभा का परिचय देने के लिए कार्यक्षेत्र में उतरने का अवसर मिलना चाहिए। इस संदर्भ में नर का उत्तरदायित्व विशेष है। की गई भूलों से हानि भी उसी को उठानी पड़ी है। सुधारने में पुरुष को ही अधिक तत्परता बरतनी चाहिए। लाभ भी अपेक्षाकृत उसी को अधिक मिलेगा॥ ७१-७७॥

उपदेशेन चानेन तत्रस्थानामभूत्स्वतः।
नारीणां स्वगरिम्णस्तु बोधो विस्मयकारकः॥७८॥
संकल्पश्च नवस्तेन तासां प्रादुरभूद् हृदि।
कर्तुं नव्यं च निर्माणं स्वस्तरस्य तथैव च॥७९॥
कर्तृत्वस्योत्थितेश्चापि सोत्साहं सहसाऽद्भुतम्।
उपेक्षकाश्च नारीणामन्वभूवंस्त्रुटीर्निजाः॥८०॥
व्यवहारं निजं तेऽपि भविष्यत्समये समे।
निरचिन्वन् विधातुं तु परिवर्तितमाशु च॥८१॥

टीका—इस प्रवचन से उपस्थित नारियों को अपनी गरिमा का विस्मयकारी बोध हुआ। अपने स्तर, उत्थान एवं कर्तृत्व का अभिनव निर्माण करने के लिए मन में नया संकल्प उभरा। जो नारी के प्रति

...ा बरतते थे, उन्हें ...ी भूल का अनुभव हुआ। भविष्य में उनने भी अपना व्यवहार बदलने का निश्चय किया॥ ७८-८१ ॥

सत्रमद्यतनं दिव्यं समाप्तं च यथाविधि ।
दृष्ट्वा सूर्यास्तवेलां च नित्यकर्मविधित्सया ॥८२॥
ययुः सर्वे निवासान् स्वान् प्रस्फुरद्दिव्यचिंतनाः ।
अर्द्धनारीश्वरं रूपं विजानंतो शिवस्य तत् ॥८३॥
सत्यं यच्च शिवं नृणां सुन्दरं स्वर्गदं भुवि।
प्रज्ञायुगस्य दृश्यं तत् क्षणं बुद्धौ विदिद्युते॥८४॥

टीका—आज का सत्र भी यथाविधि संपन्न हुआ। सूर्यास्त की वेला देखकर सभी अपने निवास स्थलों पर नित्यकर्म के लिए चले गए। उनके चिंतन में दिव्य स्फुरण हो रहा था। शिवजी का अर्द्धनारीश्वर रूप मानव विज्ञान के रूप में उन्हें दीखा, जो 'सत्यं-शिवं-सुंदरम्' का प्रतिबिंब था। भावी प्रज्ञायुग की एक झलक-सी उनके मस्तिष्क में कौंध गई॥ ८२-८४ ॥

इति श्रीमत्प्रज्ञोपनिषदि ब्रह्मविद्याऽऽत्मविद्ययोः युगदर्शन युग-साधनाप्रकटीकरणयोः, श्री धौम्यऋषि प्रतिपादिते 'नारी-माहात्म्य' इति प्रकरणो नाम

॥ तृतीयोऽध्यायः ॥

॥ अथ चतुर्थोऽध्यायः ॥

शिशुनिर्माण प्रकरण

दिवसोऽद्य चतुर्थस्तु धर्मसत्रस्य तस्य च।
अभूद् गृहस्थजस्याशु यत्र धर्मात्मसु शुभा ॥ १ ॥
नृषु कुंभागतेष्वेषा चर्चा प्रचलिताऽभितः ।
ऋषिर्धौम्यः करोत्यत्र सत्संगमुपयोगिनम् ॥ २ ॥

श्रुतं येनैव सोत्साहः स नरोऽभूद् वि[illegible] च।
कर्माण्यन्यानि सत्संगे समयात्पूर्वमाययौ ॥ ३ ॥
आगंतणां तमुत्साहं दृष्ट्वा चैव प्रतीयते।
विस्मृतं ते गृहस्थस्य ज्ञातुं गौरवमुत्तमम् ॥ ४ ॥
अभूवन् सफला येन दायित्वानां स्वकर्मणाम्।
नवीनमिव संज्ञानं तेषां तत्रोदगान्नृणाम् ॥ ५ ॥
श्रवणानंतरं तत्र संदर्भे ते परिष्कृतिम् ।
परिवर्तनमानेतुमदृश्यंत तं समुत्सुकाः ॥ ६ ॥
तेषामाकृतिगण्याश्च भावा एवं समुद्गताः।
अभूत्प्रवचनस्याद्य विषयः शिशुनिर्मितिः ॥ ७ ॥

टीका—आज गृहस्थ-सत्र का चौथा दिन था। कुंभपर्व में आए धर्मप्रेमियों में यह चर्चा फैली कि ऐसा उपयोगी सत्संग धौम्य ऋषि चला रहे हैं। जिसने सुना उसी का उत्साह उभरा और सब काम छोड़कर उस पुण्य प्रयोजन में सम्मिलित होने के लिए समय से पूर्व ही जा पहुँचे। आगंतुकों के उत्साह को देखते हुए प्रतीत होता था कि वे भूली हुई गृहस्थ गरिमा को समझने में बहुत हद तक सफल हुए हैं। उन्हें अपने कर्त्तव्य और उत्तरदायित्व का नए सिरे से भान हुआ है। सुनने के उपरांत वे उस संदर्भ में सुधार, परिवर्तन के लिए उत्सुक दृष्टिगोचर होते थे। यह विचार-भाव उनके चेहरे से टपके पड़ रहे थे। आज के प्रवचन का विषय था—'शिशु-निर्माण' ॥ १-७ ॥

धौम्य उवाच—

महर्षिर्धौम्य आहाग्रे प्रसंगं स्वं विवर्द्धयन्।
तत्र संबोध्यतान् सर्वान् सद्गृहस्थांस्तु पूर्ववत् ॥ ८ ॥
बालो योऽद्यतनः सो वै भविता राष्ट्रनायकः।
समाजग्रामणीर्वृक्षा भवंत्येव यथाक्षुपाः ॥ ९ ॥

कुशला अतएवात्र मालाकारा विशेषतः।
क्षुपाणां रक्षणे ध्यानं ददत्यावश्यके विधौ॥ १०॥
गोमयादेर्जलस्यापि न्यूनता न भवेदपि।
वन्याः पशवा एतान् न नाशयेयुरितीव ते॥ ११॥
सावधाना भवंत्येव कस्मिन् क्षेत्रे च संभवा।
क्षुपाणां क्रियतां वृद्धिः संकुलत्वं न तन्वते॥ १२॥
गृहस्थैश्चेतनैर्भाव्यं मालाकारैरिव स्वयम्।
गृहोद्यानस्य रम्यास्ते क्षुपा बोध्याश्च बालकाः॥ १३॥

टीका—महर्षि धौम्य ने अपने प्रसंग को आगे बढ़ाते हुए उपस्थित सद्गृहस्थों को संबोधित करते हुए कहा—'आज का बालक कल समाज संचालक और राष्ट्रनायक बनता है। छोटे पौधे ही विशाल वृक्ष बनते हैं।' अतएव कुशल माली छोटे पौधों की आवश्यकता एवं सुरक्षा पर पूरा-पूरा ध्यान देते हैं। उन्हें खाद-पानी की कमी नहीं पड़ने देते। वन्य पशु उन्हें नष्ट न कर डालें, इसका समुचित ध्यान रखते हैं। किस खेत में कितने पौधों के बढ़ने की गुंजाइश है, इस बात का ध्यान रखते हुए घिचपिच नहीं होने देते। गृहस्थों को जागरूक माली की तरह होना चाहिए तथा गृह-उद्यान के सुरम्य पौधे बालकों को समझना चाहिए॥ ८-१३॥

कुशरीरमृता ये तु मनोरोगाभिबाधिताः।
दुःस्वभावा दुराचारा वर्द्धयेयुर्न संततिम्॥ १४॥
भारायिताः समाजाय तेषां संततिरंततः।
संततौ हि सुयोग्यायां पितृसद्गतिरिष्यते॥ १५॥
हीना चेत्संततिस्तस्या जन्मदातॄणां ततः।
इहलोके परत्रापि दुर्गतिर्निश्चिताऽभितः॥ १६॥

टीका—शारीरिक, मानसिक और स्वभाव, चरित्र की दृष्टि से जो लोग पिछड़ी स्थिति में हों, वे बच्चे उत्पन्न न करें। समाज का भार न बढ़ाएँ, यही उपयुक्त है। संतान के सुयोग्य होने पर पितर सद्गति प्राप्त करते हैं, किंतु हेय स्तर के होने पर जन्मदाताओं को इस लोक में तथा परलोक में दुर्गति का भाजन भी बनना पड़ता है॥ १४-१६॥

कर्मभिः सद्भिरेवैतत्कुलं संशोभते नृणाम्।
संततेः संस्कृताया हि हस्तदत्तैः प्रियैरलम्॥ १७॥
पिंडैः पितर आयांति सुखं संतोषमेव च।
कुपात्राणां ध्रुवं यांति नरकं पितरः सदा॥ १८॥
उत्पाद्या तावती मर्त्यैः संततिः संभवेदपि।
स्नेहरक्षा विकासादि यावत्याः सुव्यवस्थितम्॥ १९॥
विना विचारं दायित्वं संततीनां च गृह्यते।
यदि दुःखं तदा यांति संततीर्ना दुःखयंति च॥ २०॥

टीका—वंश सत्कर्मों से चलता है। सुसंस्कारी संतान के हाथ का दिया पिंडदान ही पितरों को सुख देता है। कुपात्रों के पितरों तो नरक में गिरते हैं। संतान उतनी उत्पन्न करें, जितनों का दुलार, संरक्षण एवं विकास-पोषण का समुचित प्रबंध संभव हो । बिना विचारे संतान का उत्तरदायित्व लाद लेने वाले दुःख पाते और संतान के दुखी करते हैं॥ १७-२०॥

क्लिन्नमृत्स्नेव बालास्तु भवंत्येव च तान् समान्।
परिष्कृतान् कुटुंबस्य वृतौ कर्तुमिहेष्यते॥ २१॥
एतेषां स्नेहिनामत्र समाह्वाच्च नरः स्वयम्।
पूर्वमेवोपयुक्ताश्च स्थितिरुत्पादयेच्छुभाः ॥ २२॥

पित्रोः शारीरिकं स्वास्थ्यं विकासो मानसस्तथा।
अर्थप्रबंध एतादृग् भवेद् येन नवागतः॥ २३॥
उपयुक्तां स्थितिं नित्यं लभते यदि कश्चन।
पित्रो रोगी भवेत्तर्हि संततिः साऽपि जन्मनः॥ २४॥
अनुन्नतोऽसंस्कृतश्च जन्मदातृस्तरो यदि।
बालास्तथैव मूढाश्च दुश्चरित्रा भवंत्यपि॥ २५॥
अर्थस्थितावयोग्यायामभावग्रस्ततां समे।
बालका यांति तिष्ठंति तेऽविकासस्थितौ समे॥ २६॥

टीका—बालक गीली मिट्टी के समान है, उन्हें परिवार के वातावरण में ढाला जाता है। इन सम्मानित अभ्यागतों को बुलाने से पूर्व उनके लिए उपयुक्त परिस्थितियाँ उत्पन्न कर लेनी चाहिए। माता-पिता का शारीरिक स्वास्थ्य, मानसिक विकास, अर्थ प्रबंध ऐसा होना चाहिए; जिससे नवागत को आरंभ से ही उपयुक्तता उपलब्ध हो सके। माता-पिता में से कोई भी रोगी होने पर संतान जन्मजात रूप से रोगी उत्पन्न होती है। जन्मदाताओं का बौद्धिक स्तर गया गुजरा हो, स्वभाव अनगढ़ हो तो बच्चे भी वैसे ही मूढमति उत्पन्न होंगे और आगे चलकर दुश्चरित्र बनेंगे। अर्थव्यवस्था ठीक न होने की स्थिति में बालकों को अभावग्रस्त रहना पड़ता है और वे अविकसित स्तर के रह जाते हैं॥ २१-२६॥

गृहस्थजीवनैर्मर्त्यैरुपस्थाप्या निजाः शुभाः।
आदर्शा अथ सौजन्ये संस्कार्यं च कुटुंबकम्॥ २७॥
अभ्यासः सत्प्रवृत्तीनां कर्त्तव्यः सततं तथा।
स्नेहो देयश्च कर्त्तव्यः हार्दिकी ममताऽपि च॥ २८॥

अवाञ्छनीयतोत्पत्तेः सतर्कैः स्थेयमप्यलम्।
भ्रष्टं चिंतनमप्येतद्दुराचरणमप्यथ ॥ २९ ॥
उच्छृङ्खला व्यवहृतिः सद्गुणानां तु तस्कराः।
विचार्येदं निरोद्धव्याः स्वक्षेत्रे प्रहरिणेव च॥ ३० ॥
प्रांगणे विषवृक्षश्चानौचित्यस्य कदाचन।
नैवोद्भवेदिदं सर्वैर्गौरवं चाभिमन्यताम् ॥ ३१ ॥
सद्गृहस्थाश्च धन्यास्ते सर्वतो गौरवान्विताः।
परिवारं निजं ते तु सुखिनं च समुन्नतम्॥ ३२ ॥
सुसंस्कृतं विनिर्मान्ति श्रेयो लाभं प्रयांति च।
भविष्यदुज्ज्वलं तेषां संततेरपि स्वस्य च॥ ३३ ॥

टीका—गृहस्थ जीवन जीने वालों को अपना आदर्श उपस्थित करके समूचे परिकर को सज्जनता के ढाँचे में ढालना चाहिए और सत्प्रवृत्तियों का सतत अभ्यास करना चाहिए। स्नेह दिया जाए और दुलार किया जाए, किंतु साथ ही अवांछनीयताओं से सतर्क भी रहा जाए। भ्रष्ट चिंतन, दुष्ट आचरण और उच्छृंखल व्यवहार को चोर-तस्कर मानकर सावधान प्रहरी की तरह, उन्हें अपने क्षेत्र में प्रवेश करने से रोकना चाहिए। अनौचित्य का विषवृक्ष अपने आँगन में न उगने देने में ही गौरव है। ऐसे गौरवशाली सद्गृहस्थ हर दृष्टि से धन्य बनते हैं। अपने परिवार को सुखी, समुन्नत और सुसंस्कृत बनाकर श्रेय लाभ प्राप्त करते हैं, उनकी संतति का भविष्य तथा अपना भविष्य भी उज्ज्वल बन जाता है॥ २७-३३ ॥

समत्वेन च मान्यास्तु कन्याः पुत्राश्च मानवैः।
तयोर्भेदो न कर्त्तव्यो मान्या श्रेष्ठा च कन्यका॥ ३४ ॥

सा हि श्रेयस्करी नृणामुभयोर्वंशयोर्यतः ।
जानक्या जनकः ख्यातः कुपुत्रैर्नहि रावणः ॥ ३५ ॥
अनुभवंति स्वतो डिंभा गर्भेमातुरलं समैः।
गर्भिण्या मानसं स्वास्थ्यं शारीरं शोभनस्थितौ ॥ ३६ ॥
यथा स्याच्च तथा कार्यं विहाराहारयोरपि।
सात्त्विकत्वं भवेद् बालवृद्धिबाधा न संभवेत् ॥ ३७ ॥
वातावृतिः कुटुंबस्य सदा स्यादीदृशी शुभा।
कुसंस्कारा न बालेषु भवेयुरुदिता क्वचित् ॥ ३८ ॥
अभिभावकसंज्ञेभ्यो भिन्नैरपि जनैर्नहि।
व्यवहार्यं तथा येन दूषिता स्याच्छिशुस्थितिः ॥ ३९ ॥
चिन्तनं ते चरित्रं च यथा पश्यंति सद्मनि।
कुटुंबे वा तथा तेषां स्वभावो भवति स्वतः ॥ ४० ॥
भविष्यच्चिंतया ताँश्च शोभनायां निवासयेत्।
वातावृतौ शिशूं स्तेषां व्यक्तित्वस्यपरिष्कृतिः ॥ ४१ ॥
प्रारंभिकेषु वर्षेषु दशस्वेव मता शुभा।
अस्मिन् काले कुटुम्बं च सतर्कं सततं भवेत् ॥ ४२ ॥
उपयुक्ताः निजाः सर्वैः परिवारगतैः नरैः।
उपस्थाप्याः शुभादर्शास्तेषामग्रे निरंतरम् ॥ ४३ ॥

टीका—कन्या और पुत्र को समान माना जाए। उनके बीच भेदभाव न किया जाए। पुत्र से भी अधिक कन्या को श्रेष्ठ और श्रेयस्कर माना जाना चाहिए, चूँकि वह पिता और ससुर दो वंशों के कल्याण से संबद्ध हैं। जनक ने कन्या से ही श्रेय पाया और रावण के अनेक पुत्र उसके लिए अपयश का कारण बने। बच्चे गर्भ में रहकर

माता से बहुत कुछ प्राप्त कर लेते हैं। इसलिए गर्भिणी के शारीरिक-मानसिक स्वास्थ्य को सही रखा जाए, उसके आहार-विहार में ऐसी सात्त्विकता रखी जाए, जो शिशु के विकास में व्यवधान उत्पन्न न करे। परिवार का वातावरण ऐसा रहे, जिसका बालकों पर कुसंस्कारी प्रभाव न पड़े। अभिभावकों के अतिरिक्त घर के अन्य सदस्य भी बालक के सम्मुख ऐसा व्यवहार प्रस्तुत करें, जिससे कोमल मन पर बुरी छाप न पड़े। चिंतन और चरित्र जैसा भी घर-परिवार में वे देखते हैं, वैसे ही ढलने लगते हैं। बच्चों के भविष्य का ध्यान रखते हुए उन्हें सुसंस्कारी वातावरण में ही पाला जाए। व्यक्तित्व के परिष्कार की ठीक अवधि आरंभ के दस वर्षों में मानी गई है। इस अवधि में समूचे परिवार को सतर्कता बरतनी चाहिए और अपने उपयुक्त उदाहरण सदा उसके सम्मुख प्रस्तुत करने चाहिए॥ ३४-४३॥

बाला बोध्या विनेयाश्च प्रायः स्नेहेन साध्विदम्।
उच्यते शिशवः स्नेहं लभन्तां शिक्षणोन्मुखम्॥ ४४॥
स्नेहातिरेकतो बाला विकृतिं यांति संततम्।
नायोग्यं दंडयेद् बालान् भयभीतान्न कारयेत्॥ ४५॥
अयोग्याचरणोत्पन्न-हानिर्याप्याऽपवार्य च।
लोकशिक्षेतिहासेन देयाऽन्या शिक्षणादपि॥ ४६॥
ज्ञानवृद्ध्यै पुस्तकानां ज्ञानमेव न चेष्यते।
भ्रमणार्थं च नेयास्ते क्षेत्रे सामीप्यवर्तिनि॥ ४७॥
मार्गप्राप्तैर्विधेया च ज्ञानवृद्धिस्तु वस्तुभिः।
जिज्ञासायाः स्वभावश्च तेषां निर्मातुमिष्यते॥ ४८॥
प्रवृत्तिरेषा प्रोत्साह्या विकासस्य मनःस्थितौ।
विधिः शोभन एवैष यस्तु प्रश्नोत्तरानुगः॥ ४९॥

कीडेयुर्न कुसंगे च बाला इत्यभिदृश्यताम्।
संस्कृतैः सखिभिर्योगो यत्नेनैषां विधीयताम्॥ ५०॥
सखिभ्योऽपि विजानंति शिशवो बहुसंततम्।
यथा संरक्षकेभ्योऽतः सावधानैश्च भूयताम्॥ ५१॥

टीका—बालकों को स्नेह से समझाने-बदलने का प्रयास किया जाए। 'एक आँख दुलार की दूसरी सुधार,' की रखने की उक्ति में बहुत सार है। अतिशय दुलार में कुछ भी करने देने से बालक बिगड़ते हैं। उन्हें पीटना डराना तो नहीं चाहिए, पर अवांछनीय आचरण की हानि अवश्य बतानी चाहिए और रोकना भी चाहिए। स्कूली शिक्षा के अतिरिक्त बच्चों को लोकाचार सिखाने का उपयुक्त तरीका सारगर्भित कथा कहानियाँ सुनाना है। ज्ञानवृद्धि के लिए पुस्तकीय ज्ञान ही पर्याप्त नहीं, उन्हें समीपवर्ती क्षेत्र में भ्रमण के लिए भी ले जाना चाहिए और रास्ते में मिलने वाली वस्तुओं के सहारे उनकी ज्ञानवृद्धि करनी चाहिए। जिज्ञासाएँ करने की, प्रश्न पूछने की आदत डालनी चाहिए। इस प्रवृत्ति को प्रोत्साहित भी करना चाहिए। मानसिक विकास का अच्छा तरीका प्रश्नोत्तर ही है। कुसंग में बच्चों को खेलने न दें। ऐसे साथियों का सुयोग बैठाएँ, जो अच्छे स्वभाव के हों। अभिभावकों की तरह साथियों से भी बच्चे बहुत कुछ सीखते हैं, इस ओर सावधान रहना चाहिए॥ ४४-५१॥

प्रवेशिकास्तरायाश्च शिक्षायाः पूर्वमेव तु।
निश्चेयं बालकायैष भविता केन वै पथा॥ ५२॥
जीविकोपार्जनं केन माध्यमेन करिष्यति।
आनुरूप्येण चास्यैव निर्णयस्याग्रिमा ततः॥ ५३॥

निर्धार्या तस्य कक्षा च शिक्षा नैवेदृशी शिशोः।
कर्त्तव्या जीवने तस्य व्यवहारं न याऽऽव्रजेत्॥ ५४॥
बुद्धौ भार इवायाति व्यर्थं चानेन कर्मणा।
शिक्षणेनानिवार्येण वञ्चितो जायते शिशुः॥ ५५॥
व्यर्थतामेति सर्वं च श्रमः कालो धनं तथा।
अनिश्चयेन चानेन पश्चात्तापस्ततो भवेत्॥ ५६॥
शिक्षोद्देश्यगतिश्चिंत्या भोजनस्येव निश्चितम्।
क्रीडार्थं समयो देयः कलाकौशलवेदिता॥ ५७॥
लोकाचारसदाचारभिज्ञता तस्य संभवेत्।
नीत्यभ्यस्तो भवेद् बालः प्रबंधश्चेदृशो भवेत्॥ ५८॥
अस्मै प्रयोजनायैतद् भ्रमणं युज्यते ध्रुवम्।
लाभदं ज्ञानवृद्ध्या चेद् भ्रमणं तद्व्यवस्थितम्॥ ५९॥
नोचेत्कौतुकमात्राय भ्रमणेन भवंत्यपि।
हानयो वैपरीत्येन भ्रमणं हि हितैर्हितम् ॥ ६०॥

टीका—प्रवेशिका स्तर की सामान्य शिक्षा पूरी करने से पूर्व ही यह निश्चय कर लेना चाहिए कि बच्चों को क्या बनाना है? उसे उपार्जन का क्या माध्यम अपनाना है। इस निर्णय के अनुरूप ही उसकी अगली शिक्षा का निर्धारण कर लिया जाए। ऐसी अनावश्यक शिक्षा न दी जाए, जो उसके व्यावहारिक जीवन में काम न आए। इससे मस्तिष्क पर अनावश्यक दबाव पड़ता है और जो सीखना आवश्यक था, उससे वंचित रहना होता है। किया गया श्रम और समय खरचा गया धन इस अनिश्चय के कारण व्यर्थ ही चला जाता है। इसके लिए पीछे सदा पश्चात्ताप रहता है। भोजन की तरह शिक्षा

के उद्देश्य का ध्यान रखना भी आवश्यक है। खेलने-कूदने का अवसर दिया जाए। कला-कौशल से भी उन्हें अभ्यस्त होने दिया जाए। लोक-व्यवहार और नीति- सदाचार का उपयुक्त ज्ञानलाभ होता रहे। ऐसा प्रबंध किया जाए। परिभ्रमण इस प्रयोजन के लिए आवश्यक है। परिभ्रमण के साथ ज्ञान-संवर्द्धन की व्यवस्था पूरी तरह जुड़ी रहे, तभी उसका लाभ है। अन्यथा कुतूहल भर के लिए इधर-उधर घूमने में कई बार तो उलटी हानि भी होती है। उपयुक्त समाधान करते रहने वालों के साथ घूमना भी हितकर है॥ ५२-६० ॥

कुसंगाद् बालका रक्ष्याः सेवकेषु सखिष्वपि।
अध्यापकेषु चान्येषु परिचितेषु जनेष्वपि ॥ ६१ ॥
योग्याः के संत्ययोग्याः के ध्येयमत्राभिभावकैः।
सतर्कत्वप्रसंगेऽस्मिन्ननिवार्यं हि मन्यताम्॥ ६२ ॥
दुष्प्रभावान् कुसंगस्य बालानां प्रकृतिस्तथा।
भविष्यच्चापि संयातो विकृतिं दुःखदायिनीम्॥ ६३ ॥
गृहकार्येषु बालानां रुचिं संपादयेन्नरः।
सहयोगस्य भावं च तेषां संवर्द्धयेदपि ॥ ६४ ॥
स्नेहात्किमपि कर्तुं च स्वातन्त्र्यं नैव दीयताम्।
मृदुताकारणात्तेषु केवलं जायते नहि॥ ६५ ॥
शीतोष्णयोः प्रभावः स परं सदसतोरपि।
प्रभावस्तेषु क्षिप्रं स प्रभवत्यञ्जसैव तु॥ ६६ ॥

टीका—कुसंग से बच्चों को बचाया जाए। सेवक, साथी, अध्यापक, परिचितों में कौन उपयुक्त, कौन अनुपयुक्त है? इसका ध्यान रखना अभिभावकों का काम है। इस संदर्भ में बहुत सतर्कता की आवश्यकता है। कुसंग के दुष्प्रभाव से कई बार बालकों का

स्वभाव एवं भविष्य ही बिगड़ जाता है, जो पीछे बड़ा दुःखदायी होता है। बच्चों को घर-परिवार के कामों में रस लेने ध्यान देने और हाथ बँटाने की आदत आरंभ से ही डालनी चाहिए। दुलार में कुछ भी करते रहने की छूट नहीं देना चाहिए। कोमलता के कारण बालकों पर सरदी-गरमी का ही अधिक अवसर नहीं होता, वरन भले-बुरे प्रभाव से भी वे जल्दी प्रभावित होते हैं॥ ६१-६६ ॥

पाणिग्रहणसंस्कारस्तदैवेषां च युज्यते।
यदेमे संस्कृता बाला संत्वपि स्वावलम्बिनः ॥ ६७ ॥
तथा योग्याश्च सन्त्वेता बालिका भारमञ्जसा।
क्षमा वोढुं गृहस्थस्य येन स्युः समयेऽपि च ॥ ६८ ॥
स्वावलंबनदृष्ट्या ता प्रतीयेरन्नपि क्षमाः।
नो पाणिग्रहणं युक्तमविपक्वायुषां क्वचित् ॥ ६९ ॥
विकासेऽनेन तेषां हि बाधाऽभ्येति समंततः।
सुविधा साधनानां हि ज्ञानवृद्धेरपीह च ॥ ७०
व्यवस्थेव सदा ध्येयं बालाः संस्कारिणो यथा।
भवंत्वपि सदा सर्वे गुणकर्मस्वभावतः ॥ ७१ ॥
चरित्रे चिंतने तेषा व्यवहारेऽपि संततम् ।
शालीनता समावेशो यथायोग्यं भवत्वपि ॥ ७२ ॥

टीका—विवाह तब करें, जब बच्चे स्वयं सुसंस्कृत व स्वावलंबी बनने की स्थिति तक पहुँचें। लड़कियों को इस योग्य होना चाहिए कि वे नए गृहस्थ का भार उठा सकें और समय पड़ने पर आर्थिक स्वावलंबन की दृष्टि से भी समर्थ सिद्ध हो सकें। परिपक्व आयु होने से पूर्व बालकों या किशोरों का विवाह नहीं करना चाहिए। इससे उनके विकासक्रम में भारी बाधा पड़ती है। ज्ञानवृद्धि तथा सुविधा-

साधनों की व्यवस्था करने की तरह ही इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि बच्चे गुण-कर्म-स्वभाव की दृष्टि से सुसंस्कारी बनें। उनके चिंतन-चरित्र और व्यवहार में शालीनता का समुचित समावेश होता रहे ॥ ६७-७२ ॥

वातावृतौ च योग्यायां वसितुं समयं च ते।
लभन्तां तान् सुयोग्यांश्च नागरान् संस्कृतानपि ॥ ७३ ॥
निर्मातुं यत्नशीलैश्च भाव्यमेवाभिभावकैः।
उन्नतस्तरव्यक्तित्वे भविष्यत्संश्रितं शिशोः ॥ ७४ ॥
सत्प्रयोजनभाजस्ते सेवाभाजो भवंत्वपि।
अवसरा ईदृशा देयास्तेभ्यः प्रोत्साहनं तथा ॥ ७५ ॥

टीका—यह भी आवश्यक है कि उन्हें (बच्चों को) उपयुक्त वातावरण में रहने का अवसर मिले। सुयोग्य-सुसंस्कारी नागरिक बनाने के लिए भी अभिभावक प्रयत्नशील रहें, क्योंकि व्यक्तित्व के समुन्नत स्तर पर ही बच्चों का उज्ज्वल भविष्य निर्भर रहता है। उन्हें सेवाभावी-सत्प्रयोजनों में भाग लेते रहने का अवसर भी देना चाहिए और प्रोत्साहन भी ॥ ७३-७५ ॥

संख्यावृद्धौरता ये तु संततेरुचितं नहि।
दायित्वं च विकासस्य तेषां ज्ञातुं क्षमा नराः ॥ ७६ ॥
श्रुत्वा तेऽद्यतनं सारगर्भितं मंगलोदयम्।
परामर्शं गता लज्जां पश्यंतो दोषमात्मनः ॥ ७७ ॥
मर्यादितां महत्तां तेऽविदुः प्रजननस्य ते।
बालकान् प्रोन्नतान् कर्तुं निरचिन्वंश्च यत्नतः ॥ ७८ ॥
वयस्केषु च बालेषु श्रुत्वा प्रवचनं त्विदम्।
शुभमद्यतनं तत्र शुभाशासोदगान्नवा ॥ ७९ ॥

महिलाश्चापि बालानामुज्ज्वलस्य भविष्यतः।
सुयोगमिव चायातमन्वभूवन् समा अपि॥ ८०॥
भाराधिक्याच्च जीर्णत्वविपदो रक्षणादपि।
संतोषः सुमहांस्तासामभूदानंदितात्मनाम् ॥ ८१॥
धौम्यप्रवचनं ताश्च वरदानमिव स्त्रियः।
दैवमेवान्वभूवंश्च दिव्यं प्रज्ञायुगोद्भवम्॥ ८२॥
समापनस्य काले च विसर्जनरताः समे।
प्रसन्ना बहुसंतुष्टा निधिं प्राप्येव चाक्षयम्॥ ८३॥

टीका—बालकों की संख्या बढ़ाने में उत्साही, किंतु उनके समुचित विकास का उत्तरदायित्व न समझने वाले आज के सारगर्भित, मंगलमय परामर्श को सुनकर लज्जित हो रहे थे और अपनी भूल मान रहे थे। उनने मर्यादित प्रजनन की महत्ता समझी एवं घर के बालकों को समुन्नत बनाने में अधिक ध्यान देने और प्रयास करने का निश्चय किया। आज के प्रवचन से समझदार बच्चों में आशा की किरणें जगीं। महिलाओं ने भी अपने बालकों का भविष्य उज्ज्वल बनाने के सुयोग का आगमन अनुभव किया। अधिक भार लदने से जीर्ण-शीर्ण होने की विपत्ति से बचने का भी उन्हें बड़ा सुख एवं संतोष मिल रहा था। उन्हें धौम्य का प्रवचन देव वरदान जैसा लगा। इसे उन्होंने प्रज्ञायुग की दिव्य देन समझा। आज के समापन समय पर विसर्जन कृत्य करते हुए विदा लेते हुए, सभी लोग और भी अधिक प्रसन्न संतुष्ट दृष्टिगोचर हो रहे थे, मानो कोई अक्षयनिधि हाथ लग गई हो॥ ७६-८३॥

इति श्रीमत्प्रज्ञोपनिषदि ब्रह्मविद्याऽऽत्मविद्ययोः युगदर्शन युग-साधनाप्रकटीकरणयोः,
श्री धौम्यऋषि प्रतिपादिते 'शिशुनिर्माण' इति प्रकरणो नाम
॥ चतुर्थोऽध्यायः॥

॥ अथ पञ्चमोऽध्यायः ॥

वृद्धजन-माहात्म्य प्रकरण

धर्मकृत्येषु वृद्धानां रुचिः स्वाभाविकी मता।
कुंभपर्वसमेष्वेते समायांत्यधिका अपि॥ १ ॥
प्रयान्त्यपि च सत्रेषु ते विचार्यातिखिन्नताम्।
अधिगच्छंति किं कार्यमस्माभिरिह संगतैः॥ २ ॥
जराजीर्णतया नैव केचनापि तु हस्तगाः।
अधिकाराः कुटुंबस्य वयस्काधिगतास्तु ते॥ ३ ॥
उपेक्षितातिथेस्तत्र स्थितिं प्राप्ता इवाद्य तु।
निर्वाहसुविधामात्रं कथञ्चित्प्राप्नुवन्निह ॥ ४ ॥
यापयंति च शून्यास्ते स्थिताः कालं निरंतरम्।
इति स्थितौ गृहस्थस्य भूमिकां कां वहन्तु ते॥ ५ ॥
नेदं तेषां मतौ सम्यक् स्थिरतां श्रयति स्म तु।
अनुभवंति समे यत्र निराशां ते निरंतरम्॥ ६ ॥

टीका—धर्मकृत्यों में वृद्धजनों की स्वाभाविक अभिरुचि रहती है। वे कुंभपर्व जैसे आयोजन में परलोक साधना की दृष्टि से पहुँचते भी अधिक संख्या में हैं। वे इन सत्रों में पहुँचते तो थे, पर यह सोचकर खिन्न होते थे कि वे करें क्या? जरा-जीर्ण होने के कारण उनके हाथ में घर-परिवार के कुछ अधिकार भी नहीं रहे, उसे वयस्कों ने सँभाल लिए। वे तो एक उपेक्षित अतिथि के रूप में उस परिकर में रहकर किसी प्रकार निर्वाह की सुविधा भर प्राप्त करते हैं। बैठे-ठाले समय गुजारते हैं, ऐसी दशा में वे गृहस्थ धर्मपालन करने की दृष्टि से क्या भूमिका संपन्न कर सकते

हैं। यह उनकी समझ में नहीं आ रहा था और निराशा जैसी अनुभव कर रहे थे॥ १-६॥

हृद्गतज्ञः समेषां स महर्षिर्धौम्य उद्गतान्।
वर्गस्यास्य जनानां तु मनोभावान् समध्यगात्॥ ७॥

धौम्य उवाच—

निश्चिकाय ततस्तेषां कर्तुं स मार्गदर्शनम्।
गृहस्थे वृद्धव्यक्तीनामपि स्थानं महत्त्वगम्॥ ८॥
वर्तते सञ्चितैस्तेऽपि स्वीयैरनुभवैरलम्।
लाभं बहुभ्यो दातुं तु शक्ता अल्पबला अपि॥ ९॥
परिष्कृताऽथ पक्वा च स्थितिस्तेषां तु मानसी।
अपेक्षया परेषां हि गृहस्थानां नृणामिह॥ १०॥
लाभमस्य कुटुम्बं तत्प्राप्नुयान्नैव केवलम्।
क्षेत्रं संपूर्णमेवापि संसारश्चाप्नुयात्समः॥ ११॥
वाञ्छेयुर्यदि ते तर्हि नवेन विधिना नवम्।
जीवनं प्राप्तुमर्हन्ति तथा कार्यक्रमं नवम्॥ १२॥
स्वीकृत्यान्यं नवे क्षेत्रे प्रवेष्टुं शक्नुवंत्यपि।
इत्थं च समयस्तेषां सञ्चितोऽनुभवस्तथा॥ १३॥
यूनामपेक्षया नूनमधिकं सेत्स्यतो ध्रुवम्।
लोकोपयोगिनौ भद्रा अत्र नास्त्येव संशयः॥ १४॥
आत्मलाभदृष्ट्या च समयोऽयं तु विद्यते।
भाग्योदयस्य कर्तेव सुयोग्यो योग उच्यताम्॥ १५॥

टीका—सबके मन की बात जानने वाले महर्षि धौम्य ने इस वर्ग के लोगों के मनोभाव जाना और उनका मार्गदर्शन करने का निश्चय किया।

महर्षि धौम्य बोले—गृहस्थ में वयोवृद्धों का भी महत्त्वपूर्ण स्थान है। वे अपने संचित अनुभवों से बहुतों को लाभ दे सकते हैं। शारीरिक क्षमता घट जाने पर भी उनकी मानसिक स्थिति अपेक्षाकृत अधिक परिष्कृत-परिपक्व होती है। इसका लाभ उस परिवार को ही नहीं, समस्त क्षेत्र एवं संसार को मिलना चाहिए। वे चाहें तो नए सिरे से नया जीवन जी सकते हैं, नया कार्यक्रम अपना सकते हैं, नए क्षेत्र में प्रवेश कर सकते हैं। हे भद्रजनो ! इस प्रकार उनका बचने वाला समय और संचित अनुभव तरुणों की अपेक्षा और भी अधिक लोकोपयोगी सिद्ध हो सकता है। आत्मलाभ की दृष्टि से वह समय उनके लिए भाग्योदय जैसा सुयोग्य है, ऐसा कहा जा सकता है ॥ ७-१५ ॥

पक्वं फलं सदा शाखां विहायान्यस्य प्राणिनः !
उपयोगाय संयाति तथैवाऽत्रापि चायुषि ॥ १६ ॥
युक्तं परिणते एव वानप्रस्थग्रहो नृणाम् ।
विद्यते शाश्वतीयं च भारतीया परंपरा ॥ १७ ॥
पुण्यार्जनस्य कालोऽयं परस्मै जन्मने तथा।
ऋणं सामाजिकं दातुं गृह्णातुं श्रेय आत्मनः ॥ १८ ॥
लोकमंगलजं नूनं महत्त्वानुगतो ध्रुवम् ।
धौम्यः संबोधयामास नरान् परिणतायुषः ॥ १९ ॥
निष्क्रियत्वात्तथा तान् स सक्रियत्वस्य चाप्तये।
बोधयामास भूयश्च कथयामास यत्समे ॥ २० ॥
निराशां परिणतां कुर्युरुत्साहे कर्म यत्कृतम्।
नाद्यावधि प्रकुर्वन्तु सोत्साहं विश्वमंगलम् ॥ २१ ॥

आधारेण च तेऽनेन मुक्ता भृत्योर्भयात्समे।
जीवन्मुक्तं मुदं यान्तु दृष्टिकोणं च दिव्यकम्॥ २२॥

टीका—पका हुआ फल डाली छोड़कर अन्यों के काम आने के लिए चला जाता है। इसी प्रकार ढलती आयु में वानप्रस्थ धर्म अपनाना ही उचित है। यही भारतीय शाश्वत परंपरा भी है। यह समय अगले जन्म के लिए पुण्यफल संचय करने, वर्तमान में समाज का ऋण चुकाने एवं लोक-मंगल का श्रेय लेने की दृष्टि से अत्यंत महत्त्व का है। महर्षि धौम्य ने आज अधेड़ आयु वालों को विशेष रूप से संबोधित किया। उन्हें निरर्थकता में सार्थकता उत्पन्न करने का परामर्श दिया और कहा कि वे निराशा को उमंगों में बदलें और विश्वमंगलमय वह काम करें जो अब तक कर नहीं पाए। इस आधार पर वे मृत्यु भय से छूटेंगे और स्वर्गीय दृष्टिकोण तथा जीवन्मुक्त स्तर का आनंद हाथोहाथ उपलब्ध करेंगे॥ १६-२२॥

प्रौढा अनुभवंत्वत्र समये चिंतयंत्वपि।
अनुशासनमेतस्या दिव्याया देवसंस्कृतेः॥ २३॥
पालयिष्याम एनं च धर्मं त्वाश्रमजं सदा।
आयुषोऽप्युत्तरार्धं च निश्चिन्वन्तु परार्थकम्॥ २४॥
सुविभाजनरेखेयमात्मकल्याणतस्तथा।
विश्वकल्याणतोऽप्यस्ति श्रेयः संपादिका ध्रुवम्॥ २५॥
विभाजनेऽस्मिन् स्वार्थस्य परार्थस्यापि विद्यते।
समावेशो हि सम्यक् सिद्ध्यंत्येतेन पूर्णतः॥ २६॥
प्रयोजनानि संस्कारव्यवहारगतान्यथ।
परात्मनः प्रसादाय चात्मनः काल आप्यते॥ २७॥
पुरातनस्य कालस्य दिव्या वातावृतिस्तु सा।
अस्याः परंपराया हि उपहार इव स्मृतः॥ २८॥

सा च प्रचलिता यावत् तावद् भूमिरियं स्मृता।
जगन्मंगलमूलेव स्वर्गादपि गरीयसी॥ २९॥
निवासिनोऽपि चात्रत्याः त्रयस्त्रिंशत्तु कोटिकाः।
अभूवन् परितः देवास्ते हि सम्मानिता अपि॥ ३०॥

टीका—प्रौढ़ों में से प्रत्येक को समय रहते यह अनुभव करना है कि वे देव संस्कृति के अनुशासन को ध्यान में रखेंगे। आश्रम-धर्म का पालन करेंगे और आयु का उत्तरार्द्ध परमार्थ प्रयोजन के लिए निर्धारित रखेंगे। यह विभाजन रेखा आत्मकल्याण और विश्वकल्याण दोनों ही दृष्टि में परमश्रेयस्कर है। इस विभाजन में स्वार्थ और परमार्थ का संतुलित समावेश है। इससे सांसारिक प्रयोजन भी पूरे होते हैं और आत्मा-परमात्मा को प्रसन्न करने का भी अवसर मिलता है। पुरातनकाल का सतयुगी वातावरण इसी परंपरा की देन था, जब तक वह प्रचलित रही, तब तक जगत के कल्याण की भूमि 'स्वर्गादपि गरीयसी' बनी रही और यहाँ के निवासी सर्वत्र तैंतीस कोटि देवता माने जाते तथा सम्मानित होते रहे॥ २३-३०॥

एतदर्थं मतं चैतत्परमावश्यकं नृणाम्।
शिशवो ह्यल्पसंख्यायामुत्पन्नाः स्युर्गृहे गृहे॥ ३१॥
विवाहस्याल्पकालाच्च पश्चात्प्रजननं स्वतः।
अवरोद्धव्यमर्धे तु व्यतीते चायुषो यतः॥ ३२॥
शिशुदायित्वमुक्तिः स्यात् प्रत्येकस्य शिशोर्हृदि।
स्थापनीयमिदं देयं तेनर्णं पैतृकं महत्॥ ३३॥
इदं तैरिह कर्त्तव्यमृणमुक्त्यै निरंतरम्।
अनुजानां सुनिर्वाहः शिक्षाऽथ स्वावलंबनम्॥ ३४॥

पितुरुत्तरदायित्वेष्वत्र जेष्ठैः सुतैः सदा।
सहयोगो विधातव्योऽनृणैर्भाव्यमिहोत्तमैः ॥ ३५ ॥
ऋणं तिष्ठेन्न पित्रोस्तद् वयस्कानां कृते त्विदम्।
शास्त्राणां विद्यते ह्याज्ञा धार्मिकी च परंपरा॥ ३६ ॥
यथोत्तराधिकारस्तु पितुः पुत्रैरवाप्यते।
तथैवोत्तरदायित्वं ते वहंतु च पैतृकम् ॥ ३७ ॥
अनुजानां तथाऽशक्तजनानां पोषणादिकम्।
तथा कार्यं यथा पित्रा कृतं ज्येष्ठसुतस्य तत्॥ ३८ ॥

टीका—इस तैयारी के लिए आवश्यक है कि प्रत्येक घर में बच्चे कम संख्या में हों। विवाह के कुछ समय उपरांत ही प्रजनन बंद कर दिया जाए, ताकि आधी आयु होने तक बच्चों के उत्तरदायित्व से निपटा जा सके। हर बालक के मन में आरंभ से ही यह बैठाया जाए कि उन्हें महान पितृऋण चुकाना है। यह ऋण चुकाने का कार्य अपने छोटे भाई-बहनों के निर्वाह एवं शिक्षा स्वावलंबन के रूप में करना होता है। पिता के उत्तरदायित्वों में हाथ बँटाना, बड़े बच्चों का कर्त्तव्य है। ऋणी किसी का भी नहीं रहना चाहिए। माता-पिता का भी नहीं, यह वयस्क बालकों के लिए शास्त्रों का अभिवचन है। यही धर्मपरंपरा भी है। पिता का उत्तराधिकार जहाँ बच्चों को मिलता है, वहाँ उनके शेष उत्तरदायित्वों का भी परिवहन करें। छोटे भाई-बहनों, घर के वृद्ध या अशक्त जनों का भरण-पोषण उसी प्रकार करना चाहिए, जैसे कि पिता ने ज्येष्ठ पुत्र का किया है॥ ३१-३८॥

ज्येष्ठा तु संततिर्यर्हि गृहकार्यं विभर्त्यलम्।
व्यतीतार्धायुषा कार्यं पुरुषेण ततः स्वयम्॥ ३९ ॥

स्वकर्त्तव्यधिया शेषसदस्यानां सुरक्षया।
भरणेन सहैवात्र परार्थं कर्म चाधिकम् ॥ ४० ॥
प्रयोजनेषु देयं च ध्यानमध्यात्मकेष्वपि।
पत्नी कुर्याच्च कार्याणि गृहस्थस्य समान्यपि ॥ ४१ ॥
इच्छुका सा सुयोग्या च यदि तत्साऽपि सादरम्।
प्रयोजनेषु नेयैव परार्थेषु सहैव तु ॥ ४२ ॥
परंपरेयं प्रोक्ता च वानप्रस्थाभिधानतः।
इमं च निर्वहेद् धर्मं गृहस्थमिव सर्वदा ॥ ४३ ॥

टीका—बड़ी संतान जब गृहकार्य सँभालने लगे तो अधेड़ का कर्त्तव्य हो जाता है कि परिवार के शेष सदस्यों की देख-भाल करने के साथ-साथ अपने समय का अधिकांश भाग परमार्थ प्रयोजनों के लिए निकालने लगे। अध्यात्म प्रयोजनों की ओर अधिक ध्यान दे। यदि वह इच्छुक और सुयोग्य हो तो उसे भी परमार्थ प्रयोजनों में साथ रखे। इसी का नाम वानप्रस्थ है। इसका निर्वाह गृहस्थ धर्म के निर्वाह की तरह ही आवश्यक है॥ ३९-४३ ॥

गृहस्थान्निवृत्तेर्वानप्रस्थे प्रवृत्तिकस्य च।
मध्ये कर्तुं स्वभावे तु परिवर्तनमप्यथ ॥ ४४ ॥
भावि जीवनजं नव्यं स्वरूपंज्ञातुमुत्तमम्।
आरण्यके तु कस्मिंश्चित् साधनायां रतैर्नरैः ॥ ४५ ॥
भाव्यं कार्यं च पापानां प्रायश्चित्तं तु कर्मणाम्।
साधनां च प्रकुर्वंति स्वभावं परिवर्तितुम् ॥ ४६ ॥
प्रयोजनानां योग्यानां लोकमङ्गलकारिणाम् ।
प्रशिक्षणानि सर्वैश्च प्राप्तव्यानि नरैरिह ॥ ४७ ॥

परिवर्तितुमेनं च जीवनस्य क्रमं त्विमम्।
आवश्यकं मतं वातावृतेश्च परिवर्तनम्॥ ४८॥
आरण्यकाश्रमाणां च वातावरणमुत्तमम्।
एतदर्थं भवत्येव लोकमंगलयोजितम् ॥ ४९॥
आरण्यकानां मध्ये च वानप्रस्थसुसाधनाम्।
कृत्वैव लोककल्याणपुण्यकार्यं विधीयताम्॥ ५०॥
प्रत्येकस्मिन्नवीने च क्षेत्रे प्रविशता सदा।
प्राप्तव्यमनुकूलं च प्रशिक्षणमिह स्वयम्॥ ५१॥

टीका—गृहस्थ से निवृत्ति और वानप्रस्थ में प्रवृत्ति के मध्यांतर में स्वभाव परिवर्तन और भावी जीवन का नया स्वरूप समझने के लिए किसी आरण्यक में जाकर साधनारत होना चाहिए। गृहस्थ में बन पड़े पापकर्मों का प्रायश्चित करें। स्वभाव परिवर्तन के लिए साधना करें। लोक-मंगल के विविध प्रयोजनों के उपयुक्त प्रशिक्षण प्राप्त करें। जीवनक्रम बदलने के लिए वातावरण बदलना आवश्यक है। इसके लिए आरण्यक-आश्रमों का प्रेरणाप्रद वातावरण उपयुक्त पड़ता है। चूँकि उसका संयोजन ही लोक-मंगल की दृष्टि से किया हुआ होता है। आरण्यकों की मध्यांतर, वानप्रस्थ साधना के उपरांत लोक-मंगल के पुण्य प्रयोजनों में संलग्न होने की विद्या अपनाएँ। हर नए क्षेत्र में प्रवेश करने वाले को तदनुरूप प्रशिक्षण प्राप्त करना पड़ता है॥ ४४-५१॥

प्रव्रज्यायां हि योग्यत्वं सुविधाऽपि च विद्यते।
येषां ते तीर्थयात्रार्थं यांतु धर्मोपदिष्टये ॥ ५२॥
प्रत्येकेन जनेनात्र साध्यः संपर्क उत्तमः।
अनुन्नतेषु गंतव्यं क्षेत्रेष्वेवं क्रमान्नरैः॥ ५३॥

रात्रौ यत्र विरामः स्यात्तत्र कुर्यात्कथामपि।
कीर्तनं चोपदेशं सत्संगं यत्नेन पुण्यदम्॥ ५४॥
तीर्थयात्रा तु सैवास्ति योजनाबद्धरूपतः।
वातावृतिर्भवेद् यत्र निर्मिता धार्मिकी तथा॥ ५५॥
सदाशयस्य यत्र स्यात्पक्षगं लोकमानसम्।
पोषणं सत्प्रवृत्तीनां भवेद् यत्र निरंतरम्॥ ५६॥
तीर्थयात्रा सुरूपे च प्रव्रज्यारतता त्वियम्।
वर्तते वानप्रस्थस्य श्रेयोदा साधना शुभा॥ ५७॥

टीका—जिनकी योग्यता एवं सुविधा प्रव्रज्या के उपयुक्त हो, वे धर्मप्रचार की तीर्थयात्रा पर निकलें। जन-जन से संपर्क साधें। पिछड़े क्षेत्रों में परिभ्रमण करें। जहाँ रात्रि विराम हो, वहाँ कथा-कीर्तन, प्रवचन-सत्संग का आयोजन करें। धर्मधारणा का वातावरण उभारते, लोक-मानस को सदाशयता का पक्षधर बनाते, सत्प्रवृत्तियों का परिपोषण करते, योजनाबद्ध यात्रा पर निकलने को तीर्थयात्रा कहते हैं। तीर्थयात्रा के रूप में प्रव्रज्यारत रहना वानप्रस्थ की परम श्रेयस्कर साधना है॥ ५२-५७॥

कस्मादपि च हेतोस्तु येषां वासोऽधिकं नहि।
बहिः संभव एतेऽपि निवासं स्वं तु सद्मनि॥ ५८॥
स्वीकुर्वंतु कुटुंबस्य सामान्यं हि निरीक्षणम्।
दायित्वस्य धिया चात्र परिवारव्यवस्थितिम्॥ ५९॥
कार्यं स्वं प्रमुखं ते च लोकमंगलमेव तु।
मन्यन्तां तेषु कार्येषु रुचिं गृह्णन्तु चाधिकाम्॥ ६०॥
अधिकं समयं तत्र समीपतरवर्तिषु।
क्षेत्रेषु वाहयन्त्येवं सद्दैवैर्भिर्निमित्तकैः॥ ६१॥

कार्यक्रमेषु तत्रैवं विधेष्वेव तथाऽऽयुषः।
उत्तरार्द्धं जीवनस्य व्ययीकर्त्तव्यमुत्तमैः॥ ६२॥

टीका—जिनका कारणवश बाहर रह सकना संभव न हो, वे निवास तो घर पर ही रखें, पर उत्तरदायित्व, परिवार की देख-भाल और व्यवस्था भर को सँभालें। अपना प्रमुख कार्य तो लोक-मंगल को समझें। इन कार्यों में विशेष रुचि लें और समय का बड़ा अंश इस निमित्त समीपवर्ती क्षेत्रों में ही लगाते रहें। ऐसे ही कार्यक्रमों में संलग्न होकर उत्तम पुरुषों को अपने जीवन का उत्तरार्द्ध बिताना चाहिए॥ ५८-६२॥

विगतार्धायुषा पुसां वर्गेणैवं न वंशजाः।
कुटुंबत्वेन विज्ञेयाः केवलं परमत्र तैः॥ ६३॥
आत्मीयताऽपि वृद्धिः सा कर्त्तव्या क्रमशश्च ते।
प्रतिवेशिन एवं च सर्वान् परिचितांस्तथा॥ ६४॥
अज्ञातानपि मन्येरन् परिवारगतानिव।
अल्पेभ्यो वंशजेभ्यो न जीवनं यापयंतु ते॥ ६५॥
समयस्य बृहद्भागं जनान् सर्वान् कुटुंबिनः।
विशालक्षेत्रगान् मत्वा तेषां तत्र समाहितौ॥ ६६॥
समस्यानां तथा तेषामभ्युत्थानविधावपि।
व्ययं कुर्युर्निषिद्धात्र पश्चिमायुषि संततिः॥ ६७॥
विचारपरिवारे तु वंशवृद्धिः सुसंभवा।
मता वसन् कुटुंबे च तत्र संरक्षको भवेत्॥ ६८॥
आधिपत्यं स्थापयेन्न सन्मार्गं शिक्षयेदपि।
खिन्नतां न व्रजेत्तत्रोपेक्षिते शासने निजे॥ ६९॥

यथाऽन्येषु जनेष्वत्र मन्यतेऽप्येनुशासनम्।
बहवो नापि चान्ये तु तत्र नो खेदसंस्थितिः॥ ७०॥
जायते तद्वदेवात्र मान्यता हि कुटुंबजे।
संबंधे पुरुषैः सर्वैर्ज्ञातव्या सुखदायिनी॥ ७१॥

टीका—अधेड़ व्यक्ति मात्र अपने वंशधरों को ही कुटुंबी न समझें, वरन आत्मीयता के क्षेत्र का विस्तार करें। पड़ोसी- संबंधी एवं परिचितों-अपरिचितों को भी कुटुंबवत् मानें। थोड़े से कुटुंबियों के लिए ही न मरते-खपते रहें। समय का एक बड़ा भाग विशाल क्षेत्र में फैले हुए जनसमुदाय को अपना कुटुंब मानते हुए, उनके समाधान एवं अभ्युत्थान के लिए लगाते रहें। जीवन के उत्तरार्द्ध में संतानोत्पादन वर्जित है। विचार परिवार के रूप में वंशवृद्धि करते रहने की छूट है। परिवार में रहते हुए भी अपनी स्थिति उस परिकर के संरक्षक जैसी रखें। आधिपत्य न जमाएँ। सन्मार्ग की शिक्षा तो देते रहें, पर न मानने पर मन को खिन्न न करें। जिस प्रकार अन्य लोगों में बहुत से परामर्श को मानते हैं, बहुत से नहीं मानते तो भी खेद नहीं होता। यही सुखदायी मान्यता घर-परिवार के संबंध में भी रखें॥ ६३-७१ ॥

वंशजा अर्थदृष्ट्या चेत् स्वावलंबं गतास्तदा।
सद्मप्रयोजनेभ्यस्तु संपदा दीयतां स्वयम्॥ ७२॥
अर्जितं यत्समं तच्चं प्राप्नुवंतु कुटुंबगाः।
आवश्यकं न चैतत्तु परं ये स्वाश्रिता नहि॥ ७३॥
अधिकारिण एते हि स्वाभिभावकसंपदः।
विराड्ब्रह्मस्वरूपाय समाजाय यथा नृणाम्॥ ७४॥
कृतं जीवनदानं तत् कालदानं भवेदिह।
तथा कुटुंबदायित्वावशिष्टं लोकभूतये ॥ ७५॥

परंपरेयमेवास्ति धार्मिकानां विवेकिनाम्।
पुण्यदा येन भूरेषा देवभूमिर्निगद्यते ॥७६॥

टीका—वंशजीवी यदि आर्थिक दृष्टि से स्वावलंबी हो गए हैं तो अपनी संपदा सत्प्रयोजनों में लगा दें। जो कमाया जाए, वह सब घर वालों को ही मिले, आवश्यक नहीं। जो स्वावलंबी नहीं, मात्र वे ही अभिभावकों के उपार्जन को उपलब्ध करने के अधिकारी हो सकते हैं। जिस प्रकार विराट ब्रह्म जनसमाज को समयदान, जीवनदान दिया गया है, वैसे ही पारिवारिक उत्तरदायित्व निर्वाह के उपरांत बचा हुआ धन भी लोक-मंगल के लिए समर्पित होना चाहिए। यही विचारशील धर्मपरायणों की पुण्यपरंपरा है, जिससे यह भूमि सदा 'देवभूमि' कही गई है ॥ ७२-७६ ॥

परिवर्तनशीलास्तु रीतयः सर्वदैव ताः।
नवे युगे नवेनैव विधिना निर्वहेज्जनः ॥७७॥
जीवनं स्वं समैरत्र देया स्वीकृतिरञ्जसा।
अनीतिगानां कार्याणां विरोधः कार्य एव च॥७८॥
बाह्यानि तानि कार्याणि गृहस्थान्यपि वा पुनः।
प्रेम्णैव व्यवहर्तव्यं सेव्याः सर्वे यथोचितम् ॥७९॥
मोहोऽनावश्यकः कार्यः परेषु स्वेषु वाऽपि न।
आहारस्य च मात्रां तां वार्द्धक्येऽल्पां समाश्रयेत्॥८०॥
सुपाच्यानि च वस्तूनि सात्त्विकानि सदैव हि।
ग्राह्याणि हृदयं नित्यं प्रसन्नं तुलितं भवेत्॥८१॥
क्षोभं नैव व्रजेत्तत्र येषु केषु विधिष्वपि।
न्यूनत्वमधिकारे तु कर्त्तव्ये विस्तरो भवेत्॥८२॥
सन्मार्गे गंतुमेवात्र प्रेरणां सन्ततं शुभाम्।
सर्वेभ्यस्तु जनेभ्योऽत्र निर्विशेषं प्रदीयताम्॥८३॥

भेदं स्वस्य परस्यात्र न कुर्युः स्युश्च साधना।
स्वाध्यायः संयमः सेवा वानप्रस्थेऽच्छमद्भुतम्॥ ८४॥

टीका—प्रथाएँ परिवर्तनशील हैं। नई पीढ़ी को अपने ढंग से गुजर करने की छूट देनी चाहिए। असहयोग और विरोध अनैतिक कार्यों के करना ही चाहिए, भले ही कोई बाहर का हो या घर का। प्रेम सबसे करें, सेवा यथोचित् रीति से सभी की करें, पर अनावश्यक मोह अपने-पराए किसी के प्रति भी नहीं होना चाहिए। वृद्धावस्था में आहार की मात्रा घटा दें। सुपाच्य, सात्त्विक वस्तुएँ ही ग्रहण करें। मन को प्रसन्न एवं संतुलित रखें। जिस-तिस बात पर खीजें नहीं। कर्त्तव्य-क्षेत्र का विस्तार करें और अधिकार को समेटें। सन्मार्ग पर चलने की प्रेरणा सभी को समान रूप से देते रहें। इसमें अपने-पराए का अंतर न करें। साधना, स्वाध्याय, संयम और सेवा का कार्य वानप्रस्थ मनःस्थिति में ही भली प्रकार बन पड़ते हैं॥ ७७-८४॥

आत्मानं चाधिकं सेवाभाविनं संयमान्वितम्।
उपकाररतं चैवमुदारं कुर्वतो भवेत्॥ ८५॥
परलोकोऽपि शांतः स सुखयुक्तश्च सर्वदा।
हितं स्वस्य जनानां च स्वानामपि भेवद्ध्रुवम्॥ ८६॥
व्यतीतार्धवयोभिस्तु वृद्धैरपि जनैरिह।
अनुभूतमिवाद्याशु प्रकाशो नव्य उत्तमः॥ ८७॥
यौवनं नवमेवैतद् भविष्यन्नवमेव च।
नवः कार्यक्रमश्चैव यथा तैराप्यतेऽद्य तु॥ ८८॥
वार्त्ता प्रचलनाऽभावे नैवाप्ताया स्वयं तु तैः।
हितैरपि न कैश्चित्तु बोधिताऽधिगता तु सा॥ ८९॥

अन्वभूवन् समे पर्वस्नानस्यात्र तथैव च।
फलं तीर्थस्य यात्रायाश्चापि प्रत्यक्षमुत्तमम्॥ ९०॥
परामर्शमिमं सर्वे कर्तुं कार्यान्वितं च ते।
निश्चयं चक्रुरत्रैके बहवो गंतुमुत्सुकाः॥ ९१॥
वानप्रस्थे व्रतं दिव्यं कर्तुं संस्कारकालजम्।
पुण्यस्थाने मुहूर्ते तु चेच्छां व्यक्तां व्यधुर्नराः॥ ९२॥
तेषां कृते द्वितीयेऽह्नि प्रातः संस्कारकं विधिम्।
वानप्रस्थस्य कर्तुं सा व्यवस्था सूचिताऽपि च॥ ९३॥

टीका—अपने को अधिकाधिक संयमी, सेवाभावी और उदार परोपकारी बनाते चलने से परलोक सुख शांतिमय बनता है। अपना तथा संबंधियों का भी हित होता है। अधेड़ों और वयोवृद्धों ने आज के प्रवचन में ऐसा अनुभव किया, मानो उन्हें नया प्रकाश यौवन, नया भविष्य और नया क़ार्यक्रम मिला हो। प्रचलन के अभाव में जो बात उन्हें अपने आप नहीं सूझी, किसी हितैषी ने भी नहीं सुझाई, वह इन्हें आज के प्रवचन द्वारा उपलब्ध हुई। उनने अनुभव किया कि पर्व-स्नान का, तीर्थयात्रा का पुण्यफल उन्हें प्रत्यक्ष मिल गया। उनने इस परामर्श को तत्काल क्रियान्वित करने का निश्चय किया। कितने ही वानप्रस्थ में प्रवेश करने का व्रतसंस्कार करने के लिए इस पुण्य स्थान में, इसी मुहूर्त में करने की इच्छा प्रकट करने लगे। उनके लिए दूसरे दिन प्रातः काल वानप्रस्थ संस्कार विधिवत् कराने की व्यवस्था सुना दी गई॥ ८५-९३॥

उपदेशेन चानेन जनैर्जीवनसाधने।
नवः प्रकाश आप्तोऽतो जीवनं तरुणायितम्॥ ९४॥
युवानश्चापि तत्रत्या उत्तरार्द्धस्य चिन्तितुम्।
विषये सज्जिता जाता वर्तमानविनिर्मितेः॥ ९५॥

शुभमुत्तरमायाति तेषां बुद्धिरभूत्तदा।
आनंदस्यातिरेकेण ह्ययोताः प्रोता इवात्र ते॥ १६॥
श्रोतारः सर्व एवैते सत्रे यातेऽवसानताम्।
विसर्जिता ययुर्वासान् गताः संयमिनामिव।
ऋषीणां तुल्यतां सर्वे ऋषिरक्त धरा यतः॥ १७॥

टीका—प्रवचन से सभी ने जीवन-साधना के संदर्भ में नया प्रकाश प्राप्त किया, जिससे उन्हें जीवन में तारुण्य का-सा अनुभव हुआ। तरुण भी उत्तरार्द्ध की तैयारी की बात सोचने लगे। वर्तमान के निर्माण में संयम में सुखद उभरेगा, यह उन्होंने भली भाँति विचार लिया। आनंद से ओत-प्रोत मनःस्थिति में सभी श्रोतागण सत्र समाप्त होने पर विसर्जित हो गए। आज वह संयमी ऋषियों के तुल्य प्रतीत हो रहे थे, ऐसा क्यों न होता, जब उनकी धमनियों से ऋषियों का ही रक्त प्रवाहमान था॥ १४-१७॥

॥इति श्रीमत्प्रज्ञोपनिषदि ब्रह्मविद्याऽऽत्मविद्ययोः युगदर्शन युग-साधनाप्रकटीकरणयोः,
श्री धौम्यऋषि प्रतिपादिते 'वृद्धजन-माहात्म्य' इति प्रकरणो नाम
॥ पञ्चमोऽध्यायः॥

॥ अथ षष्ठोऽध्यायः॥

सुसंस्कारिता-संवर्द्धन प्रकरण

भावनानां विचाराणामाकांक्षाणामथापि च।
गतिविधेरपि चौत्कृष्ट्यान्मानवोऽभ्येति प्रोन्नतिम्॥ १॥
अग्रेचरित्रदृष्ट्या च वर्द्धते सोऽन्यथा त्विह।
पूर्वजन्मकुसंस्कारा जीवने प्रभवन्त्यलम्॥ २॥
उदरपूर्तिलया वंशवृद्धिहेतोश्च केवलम्।
पशुचेष्टाभिलग्नत्वाद् व्यर्थतामेति जीवनम्॥ ३॥

हेतुनाऽनेन सर्वेषां वर्तमानमथापि च।
भविष्यज्जायते नूनमंधकारमयं नृणाम् ॥४॥
ऋषेर्धौम्यस्य बुद्धौ च प्रसंगोऽद्यायमुत्थितः।
चिंतयामास सोऽजस्रं निवृता ये कुटुंबतः॥५॥
तेभ्यो विचारा देयास्तु लग्नैर्भाव्यं कथं च तैः।
चतुर्षु पुरुषार्थेषु सेवासत्संगयोरथ ॥६॥
स्वाध्याये साधनायां च धौम्यस्यैस्तत्तु चिंतनम्।
गतिशीलमभूद् द्वारं प्रगतेरपि सुंदरम् ॥७॥

टीका—भावना, विचारणा, आकांक्षा और गतिविधियों की उत्कृष्टता का समावेश करके ही मनुष्य ऊँचा उठता है और बढ़ता है, अन्यथा विगत योनियों के कुसंस्कार ही मनुष्य जीवन पर छाए रहते हैं। पेट-प्रजनन की पशुप्रवृत्तियों में संलग्न रहकर मनुष्य जीवन निरर्थक जाता है। इस कारण वर्तमान और भविष्य भी अंधकारमय बनता है। धौम्य ऋषि के मस्तिष्क में आज यही प्रसंग छाया हुआ था। वे सोचते रहे कि परिवार से निवृत्त हुए अथवा परिवार की जिम्मेदारी से युक्तजनों को साधना, स्वाध्याय, सत्संग और सेवा के चार महापुरुषार्थों में किस प्रकार संलग्न होना चाहिए, इसका परामर्श दिया जाए। महर्षि का चिंतन गतिशील था, वह प्रगति के भव्य द्वार की तरह प्रतीत होता था॥ १-७॥

आत्मिक्याः प्रगतेर्हेतोर्नितान्तं सम्मतानि तु।
प्रयोजनानि चत्वारि गदितुं तु समागतान्॥८॥
महर्षिर्निश्चिकायाथ प्रतिपाद्यमिदं जगौ।
संबोध्य जनतां धौम्य आह चैवं स पूर्ववत्॥९॥

टीका—आत्मिक प्रगति के लिए नितांत आवश्यक इन चार प्रयोजनों को उपस्थित लोगों के गले उतारने का महर्षि ने निश्चय

किया। यही आज के प्रवचन का विषय भी बनाया। जनसमुदाय को संबोधित करते हुए, उन्होंने अपना वक्तव्य जारी रखा॥ ८-९ ॥

असंस्कृता नराश्चात्र समाजे बहवः सदा।
भवन्त्येव सुयोग्यानां दृश्यते न्यूनता तथा॥ १० ॥
कत्तृणानि तु सर्वत्र प्राय एवोद्भवन्त्यलम्।
दुर्लभौषधयो गुण्याः क्वचनैव शुभे स्थले॥ ११ ॥
भृशमन्वेषणादेव लभ्यंते कुत्रचिज्जनैः।
बहुसंख्यकवर्गेण सह संपर्ककारणात्॥ १२ ॥
अविकासं गतास्वासु व्यक्तिषु प्रतिकूलगः।
प्रभावोऽवाञ्छनीयोऽयं पतत्येव निरंतरम्॥ १३ ॥
प्रवाहे वहनं नणां सरलं भवतीत्यतः।
कुटुंबगेषु मर्त्येषु समीपतरवर्तिनः॥ १४ ॥
वातावरणकस्येवावाञ्छितः प्रपतत्यलम्।
प्रभावोऽस्मात्सुरक्ष्यं च संकटाद्धि कुटुंबकम्॥ १५ ॥
अन्यथा तु निजादर्शप्रयासेषूत्तमेष्वपि।
व्याप्ता वातावृतिः स्वेषु गृहेषु प्रभविष्यति॥ १६ ॥
तत्रत्यांश्च सदस्यान् सा पतनस्य तथैव च।
पराभूतेर्महागर्ते नेष्यत्येव न संशयः॥ १७ ॥

टीका—समाज में अनगढ़ लोग बहुत रहते हैं। सुयोग्यों की कमी पाई जाती है। घास-पात सर्वत्र उगते हैं, किंतु गुणकारी दुर्लभ औषधियाँ कहीं-कहीं ही उगती हैं और बहुत ढूँढ़ने पर कठिनाई से ही कहीं मिलती हैं। इस बहुमत के साथ प्रत्यक्ष संपर्क रहने से अविकसित व्यक्ति यों पर प्रतिकूल अवांछनीय प्रभाव पड़ता है।

प्रवाह में बहना सरल पड़ता है। इसलिए परिवार के लोगों में समीपवर्ती वातावरण की अवांछनीयताएँ घुस पड़ती हैं और बुरा प्रभाव डालती हैं। इस संकट से बचना आवश्यक है, अन्यथा निजी आदर्श और प्रयास उत्तम होने पर भी संव्याप्त वातावरण अपने घर को भी प्रभावित करेगा और उन्हें पतन के गर्त में घसीट लेगा, इसमें संदेह नहीं॥ १०-१७॥

वातावृतिस्तथाऽऽस्तिक्यभावनाया भवेदपि।
परिवारेषु सर्वेषु तथैवाराधना प्रभोः॥ १८॥
उपासना च संयुक्ता भवेच्च नित्यकर्मणि।
निश्चेतव्योऽपि कालश्च कथाकीर्तनयोः कृते॥ १९॥
बाधा वक्तुं निजाः सर्वा अन्येषां च परिस्थितीः।
ज्ञातुं च समयः सर्वैः लभ्येतेति विचिन्त्यताम्॥ २०॥
आदानं च प्रदानं च विचाराणां हि दैनिकम्।
यत्र स्यान्न भवेत्तत्र मनोमालिन्यमण्वपि॥ २१॥
प्रायस्ते कलहा भ्रांतेः कारणादुद्भवन्त्यतः।
अनिष्टमेतदुत्पन्नमात्रं सर्वैर्निवार्यताम्॥ २२॥
न वर्द्धन्ते ततस्ते च गोष्ठ्यस्तस्मान्नरैः समैः।
प्रतिसप्ताहमेवात्र कर्त्तव्या हितकारिणी॥ २३॥
स्वाध्यायार्थं गृहस्यैव पुस्तकालय एव तु।
भवेद् येन सुसाहित्यं जीवनस्योपयोगि तत्॥ २४॥
प्रत्येकेन सदस्येन लब्धुं शक्येत वाऽञ्जसा।
उपासना-गृहास्तत्र पुस्तकालय एव च॥ २५॥
प्रत्येकस्य गृहस्थस्य कृते त्वावश्यकं मतम्।
गृहेषु येषु नैतानि दुर्भाग्येन युतास्तु ते॥ २६॥

टीका—हर परिवार में आस्तिकता का वातावरण रहे। उपासना-आराधना को नित्यकर्म में सम्मिलित रखा जाए। कथा-कीर्तन, पारिवारिक गोष्ठियों के लिए कोई नियत समय रहे। सभी को अपनी अड़चनें कहने और दूसरों की परिस्थितियों को समझने का अवसर मिले। जहाँ विचारविनिमय चलता रहता है, वहाँ मनोमालिन्य नहीं पनपता। भ्रांतियों के कारण ही अधिकांश कलह-विग्रह खड़े होते हैं। ऐसी अवांछनीयताओं को पनपते ही रोका-टोका जाए तो वे बढ़ने नहीं पातीं। इस प्रयोजन के लिए सप्ताह में एक बार विचार गोष्ठियों का क्रम चलता रहे। स्वाध्याय के लिए घरेलू पुस्तकालय रहें, जिससे जीवनोपयोगी साहित्य हर सदस्य को पढ़ने या सुनने के लिए उपलब्ध हो सके। उपासनागृह और पुस्तक मंदिर प्रत्येक सद्गृहस्थ की महती आवश्यकताएँ हैं। जिस घर में ये न हों, उसे दुर्भाग्यग्रस्त ही कहा जाएगा॥ १८-२६॥

यथा शरीरवस्त्रोपकरणानामथापि च।
पात्राणां भवनादेश्च स्वच्छता दैनिकी मता॥ २७॥
सदस्यानां कुटुंबस्य हृदयेषु चराण्यपि।
मालिन्यादीनि नित्यं हि विनाश्यानि शुभेक्षणे॥ २८॥
तेषां स्थाने सुसंस्कारान् स्थापयेदीदृशांस्तु ये।
व्यवहारेषु प्रत्यक्षं दृश्यंते क्वचिदेव तु॥ २९॥
कर्हिचित्तु परं पृष्ठेष्वितिहासस्य वा पुनः।
पुराणस्य च विद्यंते गाथाः स्वर्णाक्षरांकिता॥ ३०॥

टीका—जिस प्रकार शरीर, वस्त्र, बरतन, उपकरण, मकान, फर्श आदि की नित्य सफाई की जाती है, उसी प्रकार परिवार के सदस्यों के मनों पर जमने वाले नित्य के छाए गुबार की दैनिक

सफाई ठीक समय पर होनी चाहिए। उसके स्थान पर ऐसे सुसंस्कार बोए जाने चाहिए, जो प्रचलन में प्रत्यक्ष तो कभी-कभी, कहीं-कहीं ही दीखते हैं, किंतु इतिहास-पुराणों के पृष्ठ उनकी कथा-गाथाओं के स्वर्णाक्षरों से भरे पड़े हैं॥ २७-३०॥

आदर्शानां प्रतिष्ठा तु गृहेष्वावश्यकी मता।
उपायः सरलश्चात्रादर्शवादि नृणां समे॥ ३१॥
श्रावयंतु जनान् स्वांस्तु चरितानि महांति हि।
यान्नराननुकर्तुं च नीतिरस्माभिरिष्यते॥ ३२॥
एतदर्थं च सर्वेषु पूजास्थाने गृहेषु तु।
भवेदेवाप्यलंकारमञ्जुषेव गृहस्य सः॥ ३३॥
पुस्तकालय एकस्तु यमाश्रित्य च शिक्षिताः।
आप्तवाक्यानि जानंतु श्रावयंत्वप्यशिक्षितान्॥ ३४॥
वस्त्राणां खाद्यवस्तूनां दैनिकी साऽनिवार्यता।
भवत्यपेक्षितैवं हि ज्ञानस्याऽस्मिन् हि मंदिरे॥ ३५॥
नित्यं सम्मिलितं तत्स्यात् साहित्यमुत्तमं मता।
जीवनस्य विकासाय स्वाध्यायस्यानिवार्यता॥ ३६॥
अस्याः पूर्त्यै स्थापना स्याद् गृहेष्वत्र समेष्वपि।
ज्ञानमंदिरसंज्ञानां पुस्तकालयरूपिणाम्॥ ३७॥

टीका—घर में आदर्शों की प्रतिष्ठापना आवश्यक समझी जानी चाहिए और इसके लिए उपाय सरल यही है कि उन आदर्शवादी महामानवों की चरित्र-गाथाएँ परिजनों के सामने प्रस्तुत की जा सकें, जिनके अनुकरण करने की बात सोची और रीति-नीति अपनाई जा सके। इस हेतु हर घर में पूजा स्थान, आभूषण रखने की पिटारी की

भाँति ही एक घरेलू पुस्तकालय होना चाहिए, जिसके सहारे घर के शिक्षितों को, आप्तजनों के परामर्श से पढ़ने तथा अशिक्षितों को सुनाने के लिए मिलते रहें। जिस प्रकार वस्त्रों की खाद्य पदार्थों की आवश्यकता आएदिन पड़ती है, इसी प्रकार के ज्ञानमंदिर कक्ष में भी नित्य सत्साहित्य सम्मिलित किया जाना चाहिए। स्वाध्याय जीवन-विकास की महती आवश्यकता है। इसकी पूर्ति में घरेलू ज्ञानमंदिरों की स्थापना होनी चाहिए॥ ३१-३७॥

कौटुंबिकाय नित्यं च सत्संगाय भवेदपि।
शुभः कथा प्रसंगस्तु शुभसंस्कारदायकः ॥ ३८ ॥
कथा श्रोतुं समाना वै रुचिः पुसां भवत्यलम्।
बालानामथवृद्धानां नारीणामथवा नृणाम्॥ ३९ ॥
व्यवस्थायाञ्च जातायामस्यामत्र भवत्यलम्।
मनोरंजनमस्त्येव कुटुंबस्य प्रशिक्षणम्॥ ४० ॥
दुश्चिंतन-परित्यागसद्विचारग्रहस्य च।
शिक्षा प्रत्यक्षतो नैव लोके रुचिकरा नृणाम्॥ ४१ ॥
अत्र तेऽनुभवन्त्येव स्वापमानमिवाथ च।
अहंत्वात्सत्परामर्शं श्रोतुंस्वस्मिंश्च तुच्छताम्॥ ४२ ॥
अनुभवंति न सज्जन्ते तच्छ्रोतुं बोद्धुमेव वा।
लाभदाऽतः परोक्षेण शिक्षा साऽऽदर्शवादिनी॥ ४३ ॥

टीका—पारिवारिक सत्संग के लिए घर में नित्य का शुभ संस्कारमयी कथा-प्रसंग चलना चाहिए। कथा कहने-सुनने में बाल-वृद्ध, नर-नारी सभी को समान रूप से अभिरुचि होती है। इसकी व्यवस्था चल पड़ने पर उपयोगी मनोरंजन भी होता है और प्रशिक्षण का सुयोग भी बनता है। दुश्चिंता न छोड़ने और सद्विचार अपनाने

की प्रत्यक्ष शिक्षा लोगों को सामान्यतया रुचती नहीं। इसमें वे अपना अपमान अनुभव करते हैं। अहंकारवश वे सत्परामर्श सुनने में अपनी हेठी मानते हैं, उन्हें सुनने-समझने तक को तैयार नहीं होते। इसलिए आदर्शवादी शिक्षा को कथा-प्रसंगों के माध्यम से परोक्ष रूप से देने में ही लाभ है॥ ३८-४३॥

गोलिकाऽप्यञ्जसा कट्वी निगीर्या शर्करावृता।
भवत्येव कथास्वत्र मनोरञ्जनमप्यलम्॥ ४४॥
प्रशिक्षणं परोक्षेण भवत्यपि सुयोजितम्।
अनुभवाच्छिक्षितंलौकैर्व्यक्तित्वोत्कृष्टताविधेः॥ ४५॥
कृते नैवास्ति कोऽप्यत्र सरलो विधिरुत्तमः।
प्रभावयुक्तो वा नूनमृते योग्य-कथाविधिम्॥ ४६॥
कारणं चेदमेवास्ति सूत-शौनकयोर्मुखात्।
अष्टादशपुराणानि ख्यातान्युपपुराणकैः॥ ४७॥
यथा ताश्च भवन्त्येवं जनास्ताः प्रभवन्त्यपि।
अज्ञातायां दिशायां च वहन्त्यत्र बलादिव॥ ४८॥

टीका—कड़ुवी गोली को चीनी में लपेटकर देने से, उसे आसानी से गले उतार लिया जाता है। कथाओं में रोचक मनोरंजन भी होता है और परोक्ष प्रशिक्षण भी। इसलिए अनुभव ने यह सिखाया है कि व्यक्तित्व में उत्कृष्टता का समावेश करने के लिए उपयुक्त कथा-प्रसंगों से बढ़कर और कोई सरल एवं प्रभावी तरीका नहीं है। यही कारण है कि सूत-शौनक के मुख से अठारह पुराण और अठारह उपपुराण कहलाए गए। वे कथाएँ जैसी भी भली-बुरी होती हैं, दर्शकों पर वैसा प्रभाव भी निश्चित रूप से डालती हैं और व्यक्ति अज्ञात दिशा की ओर अनचाहे भी जबरदस्ती बहने लगता है॥ ४४-४८॥

प्रज्ञापुराणमस्माच्च कथाग्रंथानुरूपगः ।
कालिकीनां स्थितीनां हि मार्गदर्शक उत्तमः ॥ ४९ ॥
अस्य चाख्यायिकास्तस्मादैतिह्यादिकमप्यलम् ।
गृहेषु वक्तुं युज्यंते यथा मातामही कथाः ॥ ५० ॥
वयोवृद्धास्तु शृण्वंति श्रीमद्भागवतं तथा ।
रामायणादिकं यच्च युवभ्योऽपि हि रोचते ॥ ५१ ॥
व्यस्ता अपि च तच्छ्रोतुं पठितुं चोत्सुकाश्च ते ।
परिवारस्तरं कर्तुमुच्चगं तस्य तेषु च ॥ ५२ ॥
सदस्येषु विधातुं च शालीन्योदयमुत्तमम् ।
क्रमः कथाप्रसंगानामत्र स नियमो भवेत् ॥ ५३ ॥
प्रभवेद्दैनिकोऽभ्यासो जीवनं कर्तुमुन्नतम् ।
दैनिकक्रममस्माच्च न कदाचित्परित्यजेत् ॥ ५४ ॥

टीका—प्रज्ञापुराण सामयिक परिस्थितियों के अनुरूप मार्गदर्शन करने हेतु अत्यंत उपयोगी कथाग्रंथ है। इसकी कहानियाँ इसमें दिया गया इतिहास आदि घरों में उसी प्रकार कहा जाना चाहिए, जैसा कि छोटे बच्चों को नानी की कहानियाँ सुनाई जाती हैं। वयोवृद्ध रामायण, भागवत आदि की पुराण-कथा पढ़ते-सुनते रहते हैं। युवावर्ग को भी वे कम पसंद हों ऐसी बात नहीं, व्यस्त रहते हुए भी वे उन्हें पढ़ने-सुनने के लिए उत्सुक रहते हैं। परिवार का स्तर ऊँचा उठाने के लिए, उसके सदस्यों में अधिक शालीनता का समावेश करने के लिए नियमित कथा-प्रसंगों का प्रवचन होना चाहिए। दैनिक अभ्यास ही जीवन को उन्नत बना सकता है, इसीलिए दैनिक कार्यक्रमों को कभी छोड़ना नहीं चाहिए॥ ४९-५४ ॥

बालकेभ्योऽभिरोचन्ते पशुपक्षिकथास्तथा।
परलोकाप्सरश्चर्चा उत्सुकास्ते कुतूहलम्॥ ५५ ॥
श्रोतुं मनोविकासाय युवभ्यः प्राय एव च।
ससाहसाः समाधात्र्यः कथाः रोचंत उन्नताः ॥ ५६ ॥
वृद्धेभ्य ऋषि संबद्धा देवताचरितानुगाः।
धर्मप्रयोजना नूनं रोचंते च प्रसंगकाः॥ ५७॥
कथाश्चेमाः परोक्षेण रोचंते त्रिभ्य एव च।
श्रवणेऽस्मिंश्च पुण्यं तन्मनोरञ्जनमप्यलम्॥ ५८ ॥
चिंतनस्य चरित्रस्य व्यवहारस्यापि शोधनम्।
प्रशिक्षणं परिष्कारकारकं यदवाप्यते ॥ ५९ ॥
अस्मिन्ननुभवेनैव कोऽपि स्वस्मिन् कदाचन।
कटाक्षादिकमेतस्या बाधा नास्त्यपमानजा॥ ६० ॥
बोधोऽप्ययं भवत्येव परिस्थितिषु च कासु च।
किं कार्यं पुरुषैरत्र विपद्भ्यो रक्षितुं स्वयम्॥ ६१ ॥
कथं भाव्यं सतर्कैश्चाऽवाञ्छितेभ्यः कथं तथा।
दुर्भाव्यं तथात्मा च रक्षणीयः सदा नरैः॥ ६२ ॥

टीका—बच्चों को पशु-पक्षियों की, परीलोक की कथाएँ अधिक रुचिकर होती हैं। उनका मानसिक विकास कुतूहल सुनने के लिए उत्सुक रहता है। युवकों और प्रौढ़ों को अनुभव- साहस प्रदान करने वाली, समस्याएँ सुलझाने और ऊँचा उठाने वाली कथाएँ अधिक सुहाती हैं। वृद्धों को ऋषियों, देवताओं, धर्मप्रयोजनों से संबंधित प्रसंग रुचते हैं। ये कथा-प्रसंग परोक्ष रूप से उपर्युक्त तीनों ही वर्गों को सुहाते हैं। इस श्रवण में पुण्य भी माना जाता है, मनोरंजन भी होता है

और सबसे बड़ा लाभ परोक्ष रूप से चिंतन, चरित्र और व्यवहार को परिष्कृत करने वाला प्रशिक्षण मिलते रहने के रूप में हस्तगत होता रहता है। इनमें किसी को अपने ऊपर कटाक्ष-व्यंग्य होने तथा अपमान होने जैसी अड़चन भी नहीं पड़ती और यह भी बोध होता रहता है कि किन परिस्थितियों में क्या करना चाहिए? विपत्तियों से बचने के लिए किस प्रकार सतर्क रहना चाहिए? किन अवांछनीयताओं से किस प्रकार दूर रहना और कैसे पीछा छुड़ाना चाहिए? ॥ ५५-६२ ॥

कथानकेषु चैतेषु नरोन्नतिकराणि च।
श्रेष्ठानामिह नृणां च तान्युदाहरणानि तु॥ ६३ ॥
इत्थं बुद्धौ तु चेष्टंते प्रत्यक्षं सम्मुखे समे।
तिष्ठंत इव कृत्यं स्वमुपदेशं दिशंति नः ॥ ६४ ॥
परिवाराय चाऽस्माभिर्यथा स क्रियते व्ययः।
दीयते समयोऽथापि क्रियते श्रम उत्तमः ॥ ६५ ॥
तथैवेयं व्यवस्थाऽपि भवेदेव मिलेदयम्।
सत्संगावसरो नूनं परिजनस्य कृते सदा॥ ६६ ॥
ज्ञानमंदिररूपाच्च स्वाध्यायः पुस्तकालयात्।
कथाप्रसंगात्सत्संगो लाभरूपेण सम्मतौ॥ ६७ ॥
यावदस्य कुटुंबस्य स्तर उन्नतिमाव्रजेत्।
आशास्यते समैर्योग्यकर्मैतत्कार्यमेव तु॥ ६८ ॥

टीका—इन कथानकों में ऊँचा उठने वाले, आगे बढ़ने वाले श्रेष्ठ व्यक्तियों के उदाहरण इस प्रकार मस्तिष्क में घूमने लगते हैं, मानो वे सामने ही बैठे और अपना क्रिया-कृत्य अनुभव एवं उपदेश हमें प्रस्तुत कर रहे हों। परिवार के लिए जिस प्रकार बहुत खरच किया जाता है, समय दिया और श्रम किया जाता है, उसी प्रकार यह

व्यवस्था भी होनी चाहिए कि परिजनों को स्वाध्याय एवं सत्संग का अवसर मिलता रहे। ज्ञानमंदिर, पुस्तकालय से स्वाध्याय का और कथा-प्रसंग से सत्संग का लाभ मिलते रहने पर परिवार का स्तर हर दृष्टि से समुन्नत होने की आशा बँधती है। इसलिए यह कदम उठाए ही जाने योग्य हैं॥ ६३-६८॥

धौम्य उवाच—

सुसंस्कृतं कुटुम्बं यद् भवितुं वाञ्छति स्वयम्।
स्वाध्यायस्य प्रकर्त्तव्या सत्संगस्य व्यवस्थितिः॥ ६९॥
तेन तस्मिन् कुटुंबे च भोजनस्येव सम्मतम्।
नित्यकर्मेव चेदं तु नृणामावश्यकं परम्॥ ७०॥
अस्मान्न्यूने कुसंस्कारनिवृत्तिर्नैव संभवा।
साधनाऽऽत्मन आहारस्तं बिना महता नहिं॥ ७१॥

टीका—धौम्य पुनः बोले—सुसंस्कृत बनने के इच्छुक प्रत्येक परिवार में स्वाध्याय और सत्संग की नियमित व्यवस्था होनी चाहिए। उन्हें भोजन-शयन की तरह आवश्यक नित्यकर्म माना जाना चाहिए। इससे कम में कुसंस्कारों से निवृत्ति किसी को भी नहीं मिल सकती। साधना आत्मा का आहार है। उसके बिना क्षुद्र को महान के साथ जुड़ने का सुयोग ही नहीं बनता॥ ६९-७१॥

साधनाभिः कुटुंबे च भवेद् वातावृतिः शुभ्रा।
आस्तिक्यभावसंपन्ना धर्मश्रद्धास्थितेः समा॥ ७२॥
भावना मान्यता नृणामाकांक्षा गतयश्च ताः।
अधोगा नैव जायंते तस्मादत्र गृहे गृहे॥ ७३॥
युगशक्तेराद्यशक्तेः प्रतिमा स्थापिता भवेत्।
महाप्रज्ञाभिधायास्तु गायत्र्याश्छविरेव वा॥ ७४॥

भोजनात्पूर्वमेवात्र सदस्याश्च समेऽपि चेत्।
नमनं वन्दनं कुर्युर्जपं ध्यानमथाऽपि च ॥ ७५ ॥
स्वल्पेऽपि समये सा वै साधनाऽप्यल्परूपिणी।
भावनात्मकशुद्ध्यर्थं सिद्धत्येव सहायिका ॥ ७६ ॥

टीका—साधना द्वारा परिवार में आस्तिकता का वातावरण बनना चाहिए। धर्मश्रद्धा बनी रहने से व्यक्ति की भावनाएँ, मान्यताएँ, आकांक्षाएँ एवं गतिविधियाँ अधोगामी नहीं बनने पातीं। इस हेतु हर घर में आद्यशक्ति, युगशक्ति, महाप्रज्ञा गायत्री की प्रतिमा अथवा छवि की स्थापना रहनी चाहिए। भोजन से पूर्व सभी उसका नमन-वंदन तथा जप-ध्यान थोड़े समय भी कर लिया करें तो वह स्वल्प-साधना भी भावनात्मक पवित्रता बनाए रहने में बहुत सहायक सिद्ध होती है ॥ ७२-७६ ॥

परिवर्तनवेलायां युगस्यात्र नवस्य च।
सृजनाय गृहस्थस्य योगदानं समस्य तु ॥ ७७ ॥
अंशदानमपीह स्यान्नियमितं सुनियोजितम्।
नरैर्ज्ञानघटः स्थाप्यः स्त्रीभिर्धर्मघटः पृथक् ॥ ७८ ॥
सत्प्रयोजनहेतोश्च कर्त्तव्यस्य धिया तु यत्।
नित्यं नियमरूपेण विहितं महदेव तु ॥ ७९ ॥
अल्पमप्युच्यते पुण्यदायकं महदेव तु।
सुखशांतिप्रदा चास्य परिणतिः सोभयत्र तु ॥ ८० ॥

टीका—युग परिवर्तन की इस पुनीत वेला में नवसृजन के लिए हर सद्गृहस्थ का योगदान, अंशदान नियमित रूप से नियोजित होते रहना चाहिए। इसके लिए पुरुष ज्ञानघट की और नारियाँ धर्मघट की

स्थापना करें। कर्त्तव्य भाव से सत्प्रयोजन के लिए नित्य नियमपूर्वक दिया गया थोड़ा-सा अनुदान भी महान पुण्यफल दायक होता और उसके परिणाम इस लोक और परलोक में सुख-शांति प्रदान करने वाले होते हैं ॥ ७७-८० ॥

उपदेशं तु धौम्यस्य श्रुत्वाऽद्यतनमद्भुतम्।
अन्वभूवन् समे तत्र महत्तां पुरुषाः स्वयम्॥ ८१ ॥
क्रीणन्तीह श्रमेणाथ लग्नभावतयाऽपि च।
निर्मूल्यं नैव चायाति सोपहार इव स्वयम्॥ ८२ ॥
सुसंस्कृतं विधातुं च कुटुम्बं क्रियते यदि।
धनांशकालयोर्दानं मनोयोगस्य संस्थितिः॥ ८३ ॥
पण्यता हानिदा नेयं चिंत्यमेतन्मुहुर्मुहुः।
स्वीकर्त्तव्यमिदं सर्वं स्वर्गमानेतुमत्र हि ॥ ८४ ॥
स्वाध्यायस्यांशदानस्य साधनाया अथापि च।
सत्संगस्यानुदानं च संततं कर्तुमेव तैः॥ ८५ ॥
निश्चितं परिवारस्य कर्तुं चाऽपि परंपराम्।
संकल्पपूर्वकं श्रद्धापूर्वकं भावनामयैः ॥ ८६ ॥
समापनं च कुर्वन्तः सर्वे कार्यक्रमं ततः।
प्रसन्नाः प्रययुर्वासानभिनंदनपूर्वकम् ॥ ८७ ॥

टीका—आज का उपदेश सुनकर सभी ने अनुभव किया कि महानता श्रम व लगन से खरीदी जाती है। किसी को भी बिना मूल्य उपहार की तरह नहीं मिलती। परिवार को सुसंस्कृत बनाने के लिए यदि थोड़ा समयदान, मनोयोग और अंशदान लगाना पड़ता है तो यह किसी भी प्रकार घाटे का सौदा नहीं है। यह बार-बार सोचना चाहिए,

तभी स्वर्ग पृथ्वी पर लाया जा सकता है। साधना, स्वाध्याय, सत्संग और अंशदान के नियमित अनुदान प्रस्तुत करने और उसे परिवार की परंपरा बनाने के लिए सभी ने संकल्पपूर्वक 'श्रद्धापूर्वक' भावनामय होकर निश्चय किया। समापन कार्यक्रम पूरा करते हुए अभिनंदन पूर्वक सभी लोग प्रसन्नचित्त से विदा हो गए॥ ८१-८७॥

इति श्रीमत्प्रज्ञोपनिषदि ब्रह्मविद्याऽऽत्मविद्ययोः युगदर्शन युग-साधनाप्रकटीकरणयोः, श्री धौम्यऋषि प्रतिपादिते 'सुसंस्कारिता-संवर्द्धन' इति प्रकरणो नाम

॥ षष्ठोऽध्यायः॥

॥ अथ सप्तमोऽध्यायः॥

विश्व परिवार प्रकरण

धौम्यश्चिंतनलग्नोऽभूत्कुटुंबस्य मयाऽत्र तु।
बोधितायां महत्तायामियत्यां कर्हिचित्समे॥ १॥
श्रोतारो मागमन् भ्रांतिं गृहप्राचीरगानि नः।
कर्त्तव्यानि तथैतानि दायित्वानि तु संति वै॥ २॥
सीम्नि तस्यां जनैरल्पैः सहादानप्रदानयोः।
व्यवस्थायां च लिप्तेऽस्मिन् मनुष्ये भवबंधनम्॥ ३॥
सीमाबंधनमेतत्स्यान्मानवस्य स्थितिस्तु तम्।
कूपमंडूकतामेषा नेष्यतीह न संशयः॥ ४॥
तदा देशस्य धर्मस्य समानायाश्च संस्कृतेः।
विषये नहि कोऽप्यत्र चिंतयिष्यति मानवः॥ ५॥
भ्रमोऽयं च समुत्पन्नो यदि चित्ते तु कस्यचित्।
तं भ्रमं तु निराकर्तुं समायाताऽनिवार्याता॥ ६॥

टीका—महर्षि धौम्य सोचने लगे, परिवार की इतनी महत्ता बताने के कारण कहीं श्रवणकर्त्ताओं को यह मतिभ्रम न होने लगे कि घर की चहारदीवारी तक ही उनके कर्त्तव्य, उत्तरदायित्व सीमित हैं। उतनी ही परिधि में थोड़े से लोगों के साथ आदान-प्रदान करते रहने भर में यह मनुष्य लिप्त हो गया तो फिर वह सीमाबंधन का काम करेगा, मनुष्य की स्थिति कूपमंडूक जैसी बना देगा, इसमें जरा भी संदेह नहीं। तब कोई देश-धर्म, समाज-संस्कृति की बात सोचेगा ही नहीं। यह भ्रम यदि मेरे प्रतिपादनों से किसी को हुआ हो तो उसका निराकरण समय रहते करने की आवश्यकता है॥ १-६ ॥

गृहान् स्वान् परिवारं च मन्येतात्र नरः सदा।
विद्यालयमिवाथापि व्यायामभवनं पुनः ॥ ७॥
क्षेत्रेऽस्मिंश्च लघावाप्ता उपलब्धीर्नियोजयेत्।
हिते लोकस्य चात्रैव विद्यते नरजन्मनः॥ ८ ॥
सार्थक्यं परमेशस्य निहिताऽत्र प्रसन्नता।
प्रसन्ने परमेशे च न किमप्यस्ति दुर्लभम्॥ ९ ॥
संसार एव ब्रह्मास्ति विराट्क्षेत्रेऽत्र मानवाः।
स्वशक्तेः पुण्यबीजानि मुक्तहस्तं वपंतु ते॥ १० ॥
विश्वसेदपि चैतत्स्यात् सहस्रं परिवर्द्धितम्।
श्रेयसां परिणामे च यन्नैरैरिष्य ते सदा॥ ११ ॥
धौम्योऽथ निश्चिकायैतद्दातुं प्रोत्साहनं तथा।
परामर्शं तु तान् सर्वान् सदस्यान् भवितुं स्वतः॥ १२ ॥
विश्वस्य परिवारस्य व्यवस्था विषयेऽस्य च।
योगदानं विधातुं स्यादपूर्णं यद्विना त्विदम् ॥ १३ ॥

तेन चापूर्णभावेन भ्रांत्युत्पत्तेस्थापि च।
प्रगतेरवरोधस्य भयं तत्रोदितं महत् ॥ १४॥
उपस्थितांश्च जिज्ञासून् प्रतिगंभीरमुद्रया।
धौम्यः स्वकथनञ्चैवं प्रारब्धं स व्यधाच्छुभम् ॥ १५ ॥

टीका—घर परिवार को व्यायामशाला, पाठशाला के समान माना जाना चाहिए। उस छोटे क्षेत्र में उपार्जित उपलब्धियों को लोकहित में नियोजित करना चाहिए। इसी में मनुष्य जन्म की सार्थकता और ईश्वर की प्रसन्नता सन्निहित है। परमेश्वर के प्रसन्न होने पर कुछ भी दुर्लभ नहीं है। यह संसार ही विराट ब्रह्म साकार परमेश्वर है। इसके खेत में अपनी क्षमताओं को जी खोलकर बोना चाहिए और बदले में हजार गुने श्रेय-सत्परिणामों का विश्वास रखना चाहिए और मानवमात्र का अभीष्ट भी यही है। आज धौम्य ने विश्व परिवार का नागरिक रहने विश्वव्यवस्था को सँभालने में भावभरे योगदान देने के लिए परामर्श-प्रोत्साहन देने का निश्चय किया। इसके बिना सत्र का शिक्षण अधूरा ही रह जाता। उस अधूरेपन के कारण भ्रांति उत्पन्न होने, प्रगति उत्पन्न होने और रुक जाने का भी भय था। धौम्य ने उपस्थित जिज्ञासुओं की ओर उन्मुख होकर गंभीर मुद्रा में अपना मंगलमय कथन आरंभ किया॥ ७-१५ ॥

धौम्य उवाच—

पारिवारिकभावं तु जानीयात्संगमं शुभम्।
समन्वयकृतं यत्र धार्मिकत्वमथापि च ॥ १६ ॥
आध्यात्मिकत्वमास्तिक्यं तत्त्वत्रयमपि स्थितम्।
साधनोपासनाऽऽराधनानां सिद्धिर्यतो भवेत् ॥ १७ ॥

एनमाश्रित्य व्यक्तेश्च चरित्रं चिन्तनं तथा।
व्यवहारस्तरोऽभ्येति नित्यमेवोन्नतिं स्थिराम्॥ १८॥
परिवारस्तु प्रत्यक्षं शोधशालेव वर्तते ।
तत्र सम्मिलितैः सर्वैः सदस्यैराप्यतेऽनिशम् ॥ १९॥
कालः कौटुंबिकान् सर्वानादर्शाञ्ज्ञातुमप्यथ।
व्यवहर्तुं यदाश्रित्य पद्मायंते कुटुंबगाः॥ २०॥
सञ्चालयंति ये तस्य सूत्रं तेषां गुणेऽथ च।
स्वभावे कर्मणीहास्ति विशेषा हि परिष्कृतिः॥ २१॥
उन्नतस्तरमेतच्च परिवर्तनमद्भुतम् ।
प्रवृत्तिमेनां स्वीकृत्य मानवो बुद्धिमत्तमः ॥ २२॥
समर्थः प्रोन्नतश्चात्रापेक्षया ह्यन्यप्राणिनाम्।
जातः कारणमस्यास्ति पारिवारिकपद्धतिः ॥ २३॥
नाऽभविष्यदिदं तस्मिन् वैशिष्ट्यं तर्हि सोपि तु।
जीर्णप्राणिस्थितौ प्राणानकरिष्यद्धि यापितान्॥ २४॥

टीका—धौम्य ने कहा—पारिवारिकता को एक ऐसा समन्वय, संगम समझना चाहिए, जिसमें आस्तिकता, आध्यात्मिकता और धार्मिकता के तीनों ही तत्त्वों का समावेश है। इसे सही रूप से अपनाने पर उपासना, साधना और आराधना के तीनों ही प्रयोजन पूर्ण होते हैं। इसके सहारे व्यक्ति का चिंतन-चरित्र और व्यवहार का स्तर ऊँचा उठता है। परिवार एक प्रत्यक्ष प्रयोगशाला है, उसमें सम्मिलित रहने वाले सदस्यों को पारिवारिकता के आदर्शों को व्यवहार रूप में समझने, अपनाने का अवसर मिलता है। यही वह आदर्श है, जिसे अपनाने पर परिवार के सदस्य कमलपुष्प बन, विकसित होते हैं। जो

उसका सूत्र-संचालन करते हैं, उनके गुण-कर्म-स्वभाव में उच्चस्तरीय परिवर्तन-परिष्कार संभव होता है। इस प्रवृत्ति को अपनाकर ही मनुष्य अन्य प्राणियों की तुलना में अधिक समर्थ, बुद्धिमान एवं प्रगतिशील बन सका, इसका प्रमुख कारण उसकी पारिवारिकता अपनाने वाली प्रवृत्ति ही है। यदि यह विशेषता न रही होती तो उसे भी अन्य दुर्बलकाय प्राणियों की तरह गई-गुजरी स्थिति में जीवन व्यतीत करना पड़ता॥ १६-२४॥

कुटुम्बं स्वं गृहस्थस्य सीमितं परिधौ सदा।
तिष्ठतीह तदाधारं कुलं तच्च कुटुंबकम् ॥२५॥
विद्यंते तस्य नूनं च महत्ताऽथोपयोगिता।
आवश्यकत्वमत्रैवं दायित्वं मौलिकं शुभम्॥ २६॥
परं ज्ञातव्यमेतन्न पारिवारिक एष च ।
आदर्शः सीमितः क्षेत्रे लघावियति केवलम्॥ २७॥
व्यापकः स च धर्मस्य दर्शनस्येव विद्यते।
परिधौ मीयते तस्य जगदेतच्चराचरम् ॥२८॥
समाजरचनाऽप्येषा जाता सिद्धांततो भुवि।
परिवारस्थितिः वीक्ष्य राष्ट्राणां घटनं तथा॥ २९॥
सिद्धांतोऽयं धरायां च सम्यग्रूपेण संस्थितः।
यावत्तावद् भुवि स्वर्गतुल्या वातावृतिः स्थिता॥ ३०॥
ये मनुष्याः सदादर्शमिमं जानंत एव च।
व्यवहारे यथाऽगृह्णन् महत्त्वं ते तथाऽऽप्नुवन्॥ ३१॥
विभूतीरधिजग्मुस्त उत्तमोत्तमतां गताः।
साधु विप्रस्तरा वानप्रस्थस्तरगताः समे ॥ ३२॥

ओतप्रोता नरा आविर्भावनाभिर्निरंतरम् ।
सर्वान् स्वान् मन्वते ते च पश्यन्तीह स्वया दृशा ॥ ३३ ॥
निरीक्षंते च यत्राऽपि दृश्यंते स्वे समेऽपि च ।
आत्मभावोऽयमेवात्र कुटुंबत्वस्य लक्षणम् ॥ ३४ ॥

टीका—निजी परिवार घर-गृहस्थी की परिधि में सीमित रहता है। उसका आधार वंश-कुटुंब है। उसकी भी अपनी महत्ता, उपयोगिता, आवश्यकता एवं जिम्मेदारी है, पर यह न समझना चाहिए कि पारिवारिकता का आदर्श इतने छोटे क्षेत्र में ही सीमित होकर रह जाता है। वह धर्म और दर्शन की तरह अत्यंत व्यापक है। उसकी परिधि में यह सारा चराचर संसार समा जाता है। समाज की सरंचना परिवार सिद्धांत पर हुई है। राष्ट्रों का गठन भी इसी आधार पर हुआ है। यह सिद्धांत जब तक सही रूप में अपनाया जाता रहा, तब तक इस धरातल पर स्वर्गोपम सतयुगी वातावरण बना रहा। जिन मनुष्यों ने इस आदर्श को जितना समझा और व्यवहार में उतारा, वे उसी अनुपात में महान बनते चले गए। उन्हें एक-से-एक बढ़कर महान विभूतियाँ उपलब्ध होती रहीं। साधु, ब्राह्मण, वानप्रस्थ स्तर के परमार्थपरायण व्यक्ति इसी भावना से ओत-प्रोत होते हैं। वे सबको अपना मानते हैं। आत्मीयता की दृष्टि से देखते हैं। जिधर भी आँख परसारते हैं, सभी अपने दीखते हैं। यह आत्मभाव ही पारिवारिकता का प्रधान लक्षण है ॥ २५-३४ ॥

गतिशीलसमाजानां रचना घटनं तथा।
परिवारे विशाले च भवतोऽत्रानुशासनम् ॥ ३५ ॥
नियमाश्च विधीयंते तदाश्रित्य नरैः सदा।
वितरणस्य रक्षायाः क्रमोऽनेन चलत्यलम् ॥ ३६ ॥

सिद्धांतमिममाश्रित्य तथा राष्ट्रमपीदृशः।
व्यवस्था प्रमुखो नूनं समाजो विद्यते स्वतः॥ ३७॥
दत्त्वा विश्वकुटुंबस्य मान्यतामग्रिमेषु च।
दिनेषु नियमाः सर्वे तथा निर्धारणानि च ॥ ३८॥
निर्मेयानि समानश्च सोऽधिकारो नृणामिह।
वसुमत्यां तथाऽस्याश्च खनिजेषु समेष्वपि॥ ३९॥
क्षेत्रजासु च सीमासु संकोचमधिगत्य यः।
क्रमो विश्वविभूतेस्तु केषांचिद्धि नृणां कृते॥ ४०॥
बाहुल्यत्वेन केषांचित् स्वल्पत्वेन च सांप्रतम्।
चलत्येष भवेन्नायमागामिदिवसेषु तु ॥ ४१॥
संयुक्ता संपदाऽत्रास्ति कुटुंब उपयुञ्जते।
यां समेप्यनिवार्याणां व्ययानां च प्रसंगतः॥ ४२॥
नहि कश्चिद् विशेषं स्वमधिकारं वदत्यथ।
वञ्चितो नहि कश्चिच्च जायतेचाधिकारतः॥ ४३॥

टीका—प्रगतिशील समाजों की सरंचना और संगठन विशाल परिवार के रूप में होता है। उसी आधार पर नियम, अनुशासन बनते हैं। वितरण और संरक्षण का क्रम भी इसी सिद्धांत को ध्यान में रखते हुए चलता है। राष्ट्र भी व्यवस्था प्रधान समाज ही है। विश्व परिवार की मान्यता अपनाकर ही अगले दिनों नवयुग के समस्त नियम निर्धारण बनेंगे। धरातल और उसकी खनिज संपदा पर मानव समाज के समस्त सदस्यों का समान अधिकार होगा। क्षेत्रीय सीमाओं में बँधकर विश्व संपदा को किन्हीं के लिए बहुत और किन्हीं के लिए नगण्य होने का जो क्रम इन दिनों चल रहा है,

वह अगले दिनों न रहेगा। परिवार में संयुक्त संपदा होती है और उसका उपयोग सभी अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप कर सकते हैं। न कोई विशेष अधिकार जताता है और न किसी को वंचित रहना पड़ता है ॥ ३५-४३ ॥

परिवारे समर्थाश्चासमर्थाः सर्व एव हि।
यथाशक्ति श्रमं कृत्वा लाभं यन्ति तथेप्सितम् ॥ ४४ ॥
भवत्येष कुटुंबस्य स्तरश्च समतां गतः।
भेदः संपन्नतायाः स दारिद्र्यस्यापि नास्ति च ॥ ४५ ॥
संयुक्ताऽस्ति समेषां च संपत्तिः समये तथा।
विशेषे पूर्यते वाञ्छाऽनिवार्या तत एव च ॥ ४६ ॥
निर्वाहः स च सामान्यः सर्वेषां भवतीह च।
आगामिषु दिनेष्वेतत् भवेत् प्रचलनं सदा ॥ ४७ ॥
संपदा स्यात्समाजस्य समैर्नागरिकैः स्तरः।
समान एव स्वीकार्यो निर्वाहस्य भविष्यति ॥ ४८ ॥
न कश्चिद् धनवान्नैव निर्धनो वा भविष्यति।
धरित्र्याश्च सुताः सर्वे महतो मनुजन्मनाम् ॥ ४९ ॥
कुटुंबस्य सदस्यत्वं गताः प्राप्स्यंति निश्चितम्।
साधनानि समानानि सम्मानं सममेव च ॥ ५० ॥

टीका—परिवार में समर्थ-असमर्थ अपनी क्षमता के अनुरूप श्रम करते और आवश्यकता के अनुरूप लाभ लेते हैं। पूरे परिवार का स्तर एक जैसा होता है। इनमें किसी में भी दरिद्र या संपन्न होने जैसा भेदभाव नहीं देखा जाता। संपत्ति सब की संयुक्त होती है। विशेष अवसरों पर उसी संचय में से सबकी विशेष आवश्यकताएँ भी पूरी होती रहती हैं।

सामान्य निर्वाह तो सबका एक जैसा होता है। अगले दिनों यही प्रयत्न चलेगा। संपदा समाज की होगी। सभी को औसत नागरिक स्तर का निर्वाह अपनाना पड़ेगा। न कोई धनी बन सकेगा और न निर्धन रहेगा। धरती माता के सभी पुत्र एक विशाल मानव परिवार के सदस्य बनकर एक समान सम्मान एक समान साधन उपलब्ध करेंगे॥ ४४-५०॥

लघूनां परिवाराणां भाषा संस्कृतिरेव च।
भवत्येकैव विश्वस्मिन् भाषाऽऽगामि दिनेषु तु॥५१॥
प्रयुक्तास्यादि हैकस्या मानव्याः संस्कृतेरथ।
अनुरूपं चिन्तनं स्याद् भवेच्च चरितं तथा॥५२॥
एक एव च धर्मः स्याद् विश्वस्मिन् सकलेऽपि ते।
नियमास्तु समानाः स्युर्मानवेषु समेष्वपि॥५३॥
निर्विशेषं च ये तत्र प्रभविष्यंति पूर्णतः।
अनुशासनमप्येवं निर्विशेषं भविष्यति॥५४॥
अवसरस्तत्र भेदानां कृते नैव भविष्यति।
यमाश्रित्य समर्थानां हस्तगाः सुविधाः समाः॥५५॥
भवेयुस्तेऽसमर्थाश्च दुर्भाग्याय तथाऽऽत्मनः।
द्रुह्यन्तु रोगशोकार्तिपीडिताः संतु जीवने॥५६॥
क्षेत्राणां च निजानां वा वर्गाणां च कृतेऽधुना।
संति प्रचलनान्यत्र निर्मीयंतेऽपि यानि च॥५७॥
संसारपरिवारे च निर्मिते स्युर्न ते क्वचित्।
व्यवस्था वाऽथ मर्यादा स्यातामत्र विनिर्मितिः॥५८॥
उभे भुवः क्वचित्कोणे वसत्सु नृषु पूर्णतः।
वंशजात्यादि भेदाच्च रहिते प्रभविष्यति॥५९॥

तत्र वर्गविशेषस्य हितानां न भविष्यति ।
ध्यानं विश्वव्यवस्थायाः सौविध्यस्यैव केवलम् ॥ ६० ॥

टीका—छोटे परिवार की भाषा एवं संस्कृति एक होती है। अगले दिनों विश्व भर में एक भाषा बोली जाएगी। एक मानव संस्कृति के अनुरूप सभी का चिंतन और चरित्र ढलेगा। एक धर्म पलेगा। समस्त संसार पर मनुष्यमात्र पर लागू होने वाले एक जैसे नियम, अनुशासन बनेंगे। ऐसे भेदभावों की कोई गुंजाइश न रहेगी, जिनकी आड़ में समर्थों के हाथ में विपुल सुविधा रहे और असमर्थ दुर्भाग्य को कोसते रहें तथा जीवन भर रोग-शोक-दुःख से पीड़ित रहें। अपने-अपने क्षेत्रों और वर्गों की सुविधा के लिए इन दिनों जो प्रचलन बनते और चलते हैं, वे विश्व परिवार बनने पर कहीं भी दृष्टिगोचर न होंगे। जो भी व्यवस्था या मर्यादा बनेगी वह धरती के किसी भी कोने में रहने वाले किसी भी जाति-वंश एवं लिंग के व्यक्ति के ऊपर समान रूप से लागू होगी। उसमें विशेष वर्गों के विशेष हितों का नहीं, विश्व व्यवस्था और सर्वजनीन सुविधा का ध्यान रहेगा ॥ ५१-६० ॥

सेनया विश्वराष्ट्रस्य कार्यं सेत्स्यति चैकया।
मतभेदा निरस्ताः स्युः पञ्चायतननिर्णयात् ॥ ६१ ॥
युद्धानि विश्वसेना च रोत्स्यति सर्वतः स्वयम्।
तत्तत्स्थानव्यवस्था तु कृता स्याद्राजपूरुषैः ॥ ६२ ॥
ईदृश्यां च स्थितावत्र सैन्यसाधनसंभवः ।
व्ययोऽनपेक्षितः स्यात्सहितमेतन्महन्नृणाम् ॥ ६३ ॥
प्रयोजनेषु चैतेषु राशिर्या विपुलाऽधुना ।
व्ययमेत्यवशिष्टं तं शिक्षायां स्वच्छता विधौ ॥ ६४ ॥

स्वास्थ्य उद्योग एवं च कृषिसिञ्चनकेऽथवा।
उत्पादनेष्वनेकेषु चोपयोक्ष्यंति पूर्णतः ॥ ६५ ॥
ईदृश्यां च दशायां हि संकटाभावविग्रहाः।
दृग्गोचरा भविष्यंति नैव कुत्राऽपि कर्हिचित् ॥ ६६ ॥
दरिद्राः पतिता रुग्णा उद्विग्ना मानवा नहि।
द्रष्टुं शक्या धरायां तु कुत्रचित्केनचिद्ध्रुवम् ॥ ६७ ॥
पारिवारिकभावे च याते व्यापकतां तथा।
सर्वत्र स्वीकृते सत्ययुगः स आगमिष्यति ॥ ६८ ॥
प्रत्येकस्मिन् मनुष्ये च द्रक्ष्यते दैवमुत्तमम्।
औत्कृष्ट्य विपदो जाता समस्याभीतयस्तथा ॥ ६९ ॥
व्यग्रभावांदतश्चात्र कुटुंबादर्शस्वीकृतौ ।
अवाञ्छितेभ्य एतेभ्यो रिक्तं स्थानं न संभवेत् ॥ ७० ॥

टीका—विश्वराष्ट्र की एक सेना रहने से काम चल जाएगा। मतभेदों को पंचायतों के माध्यम से सुलझाया जाएगा। युद्धों को विश्व सेना रोकेगी। स्थानीय व्यवस्था भर के लिए क्षेत्रीय पुलिस से काम चल जाया करेगा। ऐसी दश में सैन्य साधनों पर होने वाले खरच की तनिक भी आवश्यकता न रहेगी और यह मनुष्यों का बहुत बड़ा हित होगा। उस प्रयोजन के लिए इन दिनों जो विपुल राशि खरच होती है, उसे बचाकर शिक्षा, स्वास्थ्य, स्वच्छता, सिंचाई, उद्योग, विविध उत्पादन आदि में लगाया जा सकेगा। ऐसी दशा में न कहीं अभाव, संकट और विग्रह दृष्टिगोचर होंगे और न मनुष्यों को दरिद्र, पतित, रुग्ण स्थिति में देखा जा सकेगा। पारिवारिकता की विधा व्यापक बनने और सर्वत्र अपनाई जाने पर फिर सतयुग की वापसी संभव हो सकेगी। हर मनुष्य में देवताओं जैसी उत्कृष्टता के दर्शन होंगे।

विपत्तियाँ, समस्याएँ और विभीषिकाएँ तो आपा-धापी के कारण उत्पन्न हुई हैं। पारिवारिकता का आदर्श अपनाने पर इस अवांछनीयता के लिए कहीं कोई स्थान रह नहीं जाएगा॥ ६१-७०॥

विनाशसंकटश्चात्र महाप्रलयसदृशाः।
दृश्यंते वर्द्धमानास्तु गर्जंतः सर्वतो भुवि॥ ७१॥
पारिवारिकतावायौ चलतीह न कुत्रचित्।
सत्ताज्ञानं भवेदेषा प्रातर्जातेऽरुणोदये ॥ ७२॥
तिरोहितं तमो नृणां पश्यतां जायते यथा।
तथा विश्वकुटुंबस्य भावनायाः शुभोदये॥ ७३॥
जातेऽथापि व्यवस्थायां निर्मितायां भवेन्नहि।
त्रास उद्विग्नको येन दैन्यगाः स्युर्नरा बलात्॥ ७४॥

टीका—महाप्रलय जैसे विनाश संकट इन दिनों पृथ्वी में सर्वत्र घुमड़ते-गरजते दीखते हैं। उनमें से एक का भी पारिवारिकता का पवन चलते ही कहीं पता न चलेगा। प्रातःकाल का अरुणोदय होते ही अंधकार देखते-देखते ही तिरोहित हो जाता है। उसी प्रकार विश्व परिवार की भावना जगने और व्यवस्था बनने पर वैसा कोई त्रास रहेगा नहीं, जो मनुष्य को खिन्न, उद्विग्न करे और उसे गई-गुजरी स्थिति में रहने के लिए विवश करे॥ ७१-७४॥

केवलं न मनुष्या हि विश्वस्य परिवारगाः।
पशवः पक्षिणश्चात्र संगताः संति पूर्णतः॥ ७५॥
निर्दयत्वस्य चाऽनीतेरंतः स्याच्च तदैव तु।
तेषामपि ययोरत्र व्यवहारस्तु तैः सह ॥ ७६॥
क्रियते मनुजैः क्रूरैर्यदास्युर्भावनाः शुभाः।
कौटुंबिकस्य सर्वत्र विस्तृतास्तु गृहे गृहे॥ ७७॥

विश्वकल्याणमेतच्च संबद्धं ज्ञायतां ध्रुवम्।
अविच्छिन्नतयामर्त्यकल्याणस्यातिशायिनः ॥ ७८ ॥
पारिवारिकता भावैः प्रक्रियां व्यापिकां ततः।
विधातुं यतनीयं च मर्त्यविश्वकुटुंबजाम्॥ ७९ ॥
भविष्यदुज्ज्वलं चैतत्सम्बद्धं च यया सह।
अजस्रं सुखशांत्योश्च यत्रावतरणं तथा ॥ ८० ॥

टीका—विश्व परिवार में मात्र मनुष्य ही नहीं, पशु-पक्षी भी सम्मिलित होते हैं। उनके साथ बरती जाने वाली अनीति, निर्दयता का अंत भी पारिवारिकता की भावनाओं का विस्तार होने पर ही बन पड़ेगा। विश्व-कल्याण अतिव्यापक मानव-कल्याण की पारिवारिकता की भावना के साथ अविच्छिन्न रूप से जुड़ा हुआ समझा जाना चाहिए। विश्व परिवार की मानव परिवार की, उस प्रक्रिया को व्यापक बनाने का प्रयत्न किया जाना चाहिए, जिसके साथ उज्ज्वल भविष्य और अजस्र सुख-शांति का अवतरण अविच्छिन्न रूप से जुड़ा हुआ है ॥ ७५-८० ॥

सत्रं साप्ताहिकं यस्मिन् परिवारप्रशिक्षणम्।
कृतं धौम्येन तत्त्वद्य समाप्तं विधिपूर्वकम् ॥ ८१ ॥
कुंभस्नानार्थिनां नृणां कार्यकालोऽपि निश्चितः।
पूर्ण आरण्यकं गन्तुं महर्षेरपि चेप्सितम् ॥ ८२ ॥
विसर्जनं ततश्चास्य ज्ञानयज्ञस्य निश्चितम्।
कर्तुं विवशता जाता महर्षेः करुणात्मनः ॥ ८३ ॥
श्रोतारः स्वेषु चेतःसु सत्रसंयोजकस्य ते।
भावपूर्णं व्यधुः सर्वेऽप्यभिनंदनमद्य तु ॥ ८४ ॥
आत्मानं कृतकृत्यं चाप्यनयाऽमृतवर्षया ।
मेनिरे चित्तमेषां च श्रद्धा भावभृतं ह्यभूत् ॥ ८५ ॥

श्रुतं ज्ञातं च यत्तत्तु करिष्यामः क्रियान्वितम्।
प्रयोजनस्य सिद्धिः सा क्रियाधीनैव वर्तते॥८६॥
उपदेशः परामर्शः केवलं मार्गदर्शनम्।
उत्साहस्याथ सञ्चारे समर्थास्तु भवन्तु ते॥८७॥
कथनाच्छ्रवणान्नैव कार्यं सिद्ध्यति कस्यचित्।
संकल्पानन्तरं कार्यं कुर्यादेव क्रियान्वितम्॥८८॥

टीका—महर्षि धौम्य का एक सप्ताह का परिवार शिक्षण सत्र आज विधिपूर्वक समाप्त हुआ। कुंभ स्नान के लिए आए हुए लोगों का निर्धारित कार्यकाल भी पूरा हो गया। महर्षि को भी अपने आरण्यक आश्रम में जाना था। अस्तु, परमकारूणिक ऋषि को उस ज्ञानयज्ञ को समापन करने की विवशता थी। श्रोताओं ने मन ही मन सत्र-संयोजक ऋषि का भावभरा अभिवंदन किया और अपने को इस अमृतवर्षा से कृतकृत्य हुआ माना। सभी का मन इस श्रद्धा से भरा हुआ था कि जो सुना समझा है, उसे कार्यान्वित भी करेंगे। प्रयोजन की सिद्धि तो करने से होती है। उपदेश परामर्श तो मात्र मार्गदर्शन करते और उत्साह भरने तक के काम आते हैं। कथन-श्रवण भर से कुछ काम नहीं चलता। कार्य को, संकल्प के बाद क्रियान्वित करना अनिवार्य है॥८१-८८॥

भविष्यति च कुत्रस्यात्सत्रमेवं विधं कदा।
पुलकिता गमनोत्कास्ते पप्रच्छुः सादरं ततः॥८९॥
उदतारीदृषिः सर्वे भवंतः पर्वजेषु हि।
आयोजनेषु सर्वत्र संगताः स्युः सदैव तु॥९०॥
ईदृशी लोकशिक्षाया व्यवस्था तत्र प्रायशः।
भवतीति समैस्तत्र लाभः प्राप्तव्य उत्तमः॥९१॥

समापनसमारोहे सर्वैरेव विशेषतः ।
उत्साहो दर्शितस्तत्र महर्षेर्दिव्य चक्षुषः ॥ ९२ ॥
प्रयोजनाय दिव्याय चानुदानानि तैः नरैः ।
प्रस्तुतानि निजान्यत्र भावपूर्णानि विह्वलैः ॥ ९३ ॥
अभिवादनकार्यस्य क्रमस्तत्राशिषामपि ।
चचालाभूत्समाप्तश्च जयघोषपुरस्सरम् ॥ ९४ ॥
ज्ञानयज्ञः समेषां च विश्वमेतच्चराचरम् ।
परिवारगतं साक्षाद् बुद्धावुद्बुद्धतां गतम् ॥ ९५ ॥
प्रस्थितानां गृहास्तेषां जाता वृक्षा क्षुपा अपि ।
पारिवारिकतां याता गोप्तारो जीवनस्य च ॥ ९६ ॥

टीका—भविष्य में ऐसा सत्र कब और कहाँ होगा? यह प्रश्न पुलकित मन से विदा लेने वाले आदर सहित पूछने लगे। ऋषि ने कहा—आप लोग पर्व आयोजनों में सम्मिलित हुआ करें। वहाँ प्रायः ऐसे ही लोक-शिक्षण की व्यवस्था रहती है। अतः सभी को वहाँ उत्तम लाभ प्राप्त करना चाहिए। सभी ने समापन समारोह में विशेष उत्साह दिखाया। ऋषि प्रयोजन के लिए अपने भावभरे अनुदान भी विह्वल होकर प्रस्तुत किए। अभिवादन और आशीर्वाद का क्रम चला। जयघोष के साथ उस ज्ञानयज्ञ का समापन हो गया। सभी को समस्त चराचर विश्व अपनी बुद्धि में एक परिवार के रूप में उद्बुद्ध-सा होने लगा। घर लौटते हुए सभी को पेड़-पौधे तक अपने जीवन रक्षक पारिवारिक सदस्यों के समान दृष्टिगोचर होने लगे ॥ ८९-९६ ॥

इति श्रीमत्प्रज्ञोपनिषदि ब्रह्मविद्याऽऽत्मविद्ययोः युगदर्शन युग-साधनाप्रकटीकरणयोः, श्री धौम्यऋषि प्रतिपादिते 'विश्व परिवार', इति प्रकरणो नाम

॥ सप्तमोऽध्यायः ॥

॥ युगदेव-स्तवन ॥

अहो तां गायत्रीमखिल-जगदानंद निलयाम्
उपास्या-ब्रह्मासावसृजदमलां सृष्टिमधिकाम्।
मता या वेदानामपि निखिल विश्वस्य जननी,
सुशान्त्यै शान्तां तां जपत मनुजा! देवजननीम्॥ १ ॥

समस्त जगत के आनंद की आधारभूत जिस गायत्री की उपासना करके ब्रह्माजी ने सृष्टि रची। जिसे वेदमाता, देवमाता व विश्वमाता कहा जाता है। हे मनुष्यो! अपार शांति के लिए शांतस्वरूप उस गायत्री को भजो, उसका जप करो॥ १ ॥

त्रयो लोका यस्याश्चरण वरणास्तेऽपि च समे,
त्रयो देवास्तिस्रः प्रथितविभवा देव्य इति सा।
त्रिवेणी व्याख्याताऽक्षरगण इहाख्यातिमभजत्,
चतुर्विंशत्याहु ऋषित्रिदश-दिव्यावतरणाः ॥ २ ॥

जिसके तीन चरणों को तीन लोक, तीन देव, तीन वैभवशाली देवी-त्रिवेणी कहते हैं। जिसके चौबीस अक्षर अवतारों, देवताओं, ऋषियों के रूप में प्रख्यात हुए॥ २ ॥

सुदेव्याः संस्कृत्या इहनिगदिता मूलमखिलं,
बुधाः प्राहुः यां चामृतममरवृक्षं परमणिम्।
शिखासूत्रे यस्या दधुरमृतचिह्नं जपत तां,
युगप्रज्ञोन्मेषप्रबलकरुणां सिद्धिजननीम् ॥ ३ ॥

जो देव संस्कृति की मूल है। जिसे पारस, कल्पवृक्ष और अमृत कहा जाता है, जिसे शिखा-सूत्र के रूप में धारण किया जाता है। जो अमृत तत्त्वदायी चिह्न है; ऐसी युग परिवर्तन का उन्मेष करने में अत्यंत करुणामयी सिद्धिदात्री गायत्री को जपो॥ ३ ॥

अहो आद्यां शक्तिं कलियुगकला विस्मृततनुम्,
उपेक्षाक्षीणां ताममृतनिधिकां बुद्धिविभवाम्।
महाप्रज्ञो ह्येनां पुनरुदधरद्देवसदृश,
ऋतां तुभ्यं युगपुरुष ! नः सन्तु नतयः ॥ ४॥

उस आद्यशक्ति को काल-प्रवचना से विस्मृत रूप वाली, उपेक्षित हुई ऋतंभरा प्रज्ञा का जिसने पुनरुद्धार किया, उस महाप्राज्ञ युगपुरुष को देव संस्कृति का, उसके कोटि-कोटि अनुचरों का कोटि-कोटि नमन वंदन॥ ४॥

सदा भास्वान् भूत्वा तपति गगने यज्ञ इह यो,
भृशं पर्जन्योऽयं यमनुसततं वर्षति रसम् ।
य ओतः प्रोतश्च प्रबलतमतत्प्राणमरुता,
तदेतद्देवत्वं श्वसिति कृपया यस्य हि चितेः॥ ५॥

जो यज्ञ सूर्य के रूप में तपता है। जिसके प्रताप से पर्जन्य बरसते हैं। जो प्राण-ऊर्जा से ओत-प्रोत है। जिसकी चेतना से देवत्व जीवित है॥ ५॥

यदङ्के देवानां गण उदयमासाद्य लुठति,
भृशं पोषं प्राप्य प्रखरतरतां याति सततम्।
निधिर्ऋद्धेः सिद्धेरपि च कथिता यत्र वपुषि,
तदोजस्तेजस्त्वे वसत इह वर्चोऽभिलषति॥ ६॥

देवगण जिससे उदय प्राप्त करते है, जिसकी गोद में जन्मते, पलते, प्रखर होते और समर्पण करते हैं। जो ऋद्धि-सिद्धियों का भंडार है। जिसमें ओजस्, तेजस् और वर्चस् के सभी तत्त्व विद्यमान हैं॥ ६॥

तिरस्कारं यातो विकृतिमभजद्यः कलिबलात्,
उपेक्षां संप्राप्तोऽप्यहह निखिलारोग्यसदनम्।

अहो विष्णुं यागं पुनरुदधरद् यो बुधवर!,
प्रणामास्तुभ्यं हे युगपुरुष ! नः कोटिश इमे ॥ ७ ॥

ऐसे कलि-विडंबना से उपेक्षित, तिरस्कृत, विकृत हुए आरोग्य के उत्पत्ति स्थल विष्णु रूप यज्ञ का जिसने पुनरुद्धार किया, उस महाप्राज्ञ युगपुरुष को देव संस्कृति का, उसके अनुचरों का कोटि-कोटि नमन-वंदन ॥ ७ ॥

अहो विश्वस्तानामिव हि हृदयं यस्य सरसं,
सदास्ते भक्तानामिव गहनमाचिन्तनमपि।
सदाब्रह्मज्ञानामिव च चरितं तदृषि समं,
प्रणामास्तुभ्यं हे युग-पुरुष ! नः कोटिश इमे ॥ ८ ॥

जिसका हृदय विश्वासी भक्त जैसा सरस, जिसका गहन चिंतन ब्रह्मवेत्ताओं जैसा, जिसका चरित्र ऋषियों जैसा, जो महाप्राज्ञ है, ऐसे युगपुरुष को हम करोड़ों भक्तों का प्रणाम ॥ ८ ॥

उपास्ते य ईशं ह्यविरतमहो जीवनविधौ,
सदासक्ते लोकाधिक - सुखसमाराधनविधौ।
सदादर्शादर्शो भुवि विदित सत्सौख्य विभवः,
प्रणामास्तुभ्यं हे युगपुरुष ! नः कोटिश इमे ॥ ९ ॥

जो ईश्वर उपासना, जीवन-साधना और लोक को सुखी करने की आराधना में संलग्न आदर्शों के लिए समर्पित स्वयं आदर्श (दर्पण) के समान हैं, उस महाप्राज्ञ युगपुरुष का, देव संस्कृति और उसके अनुचरों द्वारा कोटि-कोटि नमन-वंदन ॥ ९ ॥

य उत्सेहे पातोन्मुखमनुजसत्संस्कृतिमहो,
निरोद्धुं नाशस्य प्रबलतमगर्तादनलसः।
दधीचेर्व्यासस्य परशुधर शृंगिप्रथितयोर्,
दधौ रूपं यस्त्वां युगनर ! नताः कोटिश इमे ॥ १० ॥

जिसने पतनोन्मुख मानवी संस्कृति को महाविनाश के गर्त से बचाने का आलस्य त्यागकर एकाकी साहस किया। जिसने दधीचि, व्यास, परशुराम, शृंगी, पिप्पलाद की भूमिका निभाई, हे युगपुरुष ! आपको कोटि-कोटि हम अनुचरों का प्रणाम॥ १० ॥

सुरर्षिं यो वाजिश्रवसमपि कार्यादनुगतं,
ऋषिं विश्वामित्रं मुनिवर वशिष्ठं सगरजम्।
ज्वलन्दीपान् स्नेहोद्भरित हृदयोऽज्वालयदसौ,
महावर्चः सन्तु युगपुरुष ! तुभ्यं प्रणतयः॥ ११ ॥

जिसने नारद, वाजिश्रवा, ऋषि विश्वामित्र, मुनिवर वसिष्ठ व सगर-वंशज भगीरथ की भूमिका एकाकी निभाई। जिसने स्वयं ज्वलंत होकर, स्नेहयुक्त होकर अगणित दीप जलाए, उस साहस के धनी, ब्रह्मवर्चस से ओत-प्रोत महाप्राज्ञ युगपुरुष को देव संस्कृति का, उसके कोटि-कोटि अनुचरों का कोटि-कोटि नमन-वंदन॥ ११ ॥

*****